बनारस
और
बनारसकी मिट्टीसे
जिन्हे प्यार है !

मैंने कहा—

खुदाको हाजिर-नाजिर जानकर मैं इस बातको कबूल करता हूँ कि बनारसको मैंने जितना जाना और समझा है, उसका सही-सही चित्रण पूरी ईमानदारीसे किया है। प्रस्तुत पुस्तक जिस शैलीमें लिखी गयी है, आप स्वयं ही देखेंगे। जहाँ तक मेरा विश्वास है, किसी नगरके बारेमें इस प्रकारकी व्यंग्यात्मक शैलीमें वास्तविक परिचय देनेका यह प्रथम प्रयास है। इस संग्रहके कुछ लेख जब प्रकाशित हुए तब उनकी चर्चा वह रंग लायी कि लेखक सिर्फ हल्दी-चूनेके सेवनसे वंचित रह गया। दूसरी ओर प्रशंसाके इतने पत्र प्राप्त हुए हैं कि अगर समझने साथ दिया होता तो उन्हें रद्दीमें बेचकर कमसे कम एक रियायती दरवाला सिनेमा शो तो देखा ही जा सकता था।

इन लेखोंमें कहीं-कहीं जन-श्रुतियोंका सहारा मजबूरन लेना पड़ा है। प्रार्थना है कि इन 'श्रुतियों' और स्मृतियोंको ऐतिहासिक सत्य न समझा जाय। हाँ, जहाँ सामाजिक और ऐतिहासिक प्रश्न आया है, वहाँ मैंने धर्मराज बनकर लिखनेकी कोशिश की है। पुस्तकमें किसी विशेष व्यक्ति, संस्था या सम्प्रदायको ठेस पहुँचानेका प्रयत नहीं किया गया है, बशर्ते आप उसमें जबरन यह बात न खोजें। अगर कहीं ऐसी बात हो गयी हो या छूट गयी हो तो कृपया पाँच पैसेसे पन्द्रह नये पैसेके सम्पत्ति दानकी सनद मेरे पास भेज दें ताकि अगले संस्करणमें अपने आभारका भार आपपर लाद कर हल्का हो सकूँ।

गालिबके शेरोंके लिए आदरणीय बेढबजीका, जयनारायण घोषालकी कविताओंके लिए पं० शिवप्रसाद मिश्र 'रुद्र' जीका, संगीत सम्बन्धी जानकारीके लिए पारसनाथसिंहका, पाण्डुलिपि संशोधन, धार्मिक-

सांस्कृतिक जानकारीके लिए तथा प्रूफ संशोधनके लिए केशर और भाई प्रदीपजीका आभारी हूँ।

अन्तमें इस बातका इकबाल करता हूँ कि मैंने जो कुछ लिखा है, होश-हवाशमें लिखा है, किसीके दबावसे नहीं। ये चन्द अल्फ़ाज़ इसलिए लिख दिये कि मेरी यह सनद रहे और वक्त ज़रूरतपर आपके काम आये। बस फ़कत—

सिद्धगिरि बाग,
बुद्ध पूर्णिमा, २०१५ वि०

बकलमखुद
विश्वनाथ मुखर्जी

विषय-सूची

१. बना रहे बनारस	...	६
२. बनारस : एक दिग्दर्शन	..	१८
३. बनारसकी गलियाँ	...	३०
४. बनारसके मन्दिर	..	३६
५. बनारसके मकान	...	४८
६. बनारसकी चौपाटी	..	५५
७. बनारसकी सीढ़ियाँ	..	५६
८. बनारसकी सुबह	..	६३
९. तीन लोकसे न्यारी	..	६६
१०. बनारसी	..	७४
११. बनारसके राजा	.	८५
१२. बनारसी रईस	..	९२
१३. बनारसके संन्यासी	...	९८
१४. बनारसी गुरू	...	१०७
१५. बनारसके कलाकार	..	११५
१६. बनारसके अहीर	...	१२८
१७. बनारसी संस्थाएँ	..	१३६
१८. बनारसके यान-वाहन	...	१४१
१९. बनारसी साँड	...	१४६
२०. बनारसी पान	...	१५५
२१. बनारसी पिकनिक	...	१६०
२२. यह है बनारस	...	१६५
२३. बनारसकी ठगी	..	१७०
२४. बनारसी संस्कृति	..	१८०

मङ्गल था, इसीलिए इसे 'आनन्दवन' और 'आनन्द-कानन' कहा गया। इन्हीं जङ्गलोंमें ऋषि-मुनि मौज-पानी लेते थे, इसीलिए इसे 'तपःस्थली' कहा गया। तपस्वियोंकी अधिकताके कारण यहाँकी भूमिको 'अविमुक्त-क्षेत्र' की मान्यता मिली। इसका नतीजा यह हुआ कि काफी तादादमें लोग यहाँ आने लगे। उनके मरनेपर उनके लिए एक बड़ा श्मशान बनाया गया। कहनेका मतलब काशीका नाम 'महाश्मशान' भी हो गया।

प्राचीन इतिहासके अध्ययनसे यह पता चलता है कि काश्य नामक राजाने काशी नगरी बसायी; अर्थात् इसके पूर्व काशी नगरीका अस्तित्व नहीं था। जब काश्यके पूर्व यह नगर बसा नहीं था तब यह निश्चित है कि उन दिनों यहाँ मनुकी सन्तानें नहीं रहती थीं, बल्कि शंकरके गण ही रहते थे। हमें प्रस्तर युग, ताम्रयुग और लौह युगकी बातोंका पता है। हमारे पूर्वज उत्तरी ध्रुवसे आये या मध्य एशियासे आये? इसका समाधान भी हो चुका है। पर काश्यके पूर्व काशी कहाँ थी, पता नहीं लग सका।

काशीकी स्थापना

काश्यके पूर्वज राजा थे इसलिए उन्हे राजा कहा गया है अथवा काशी नगरी बसानेके कारण उन्हे राजा कहा गया है, यह बात विवादास्पद है। ऐसा लगता है कि इन्हें अपनी पैतृक सम्पत्तिमें हिस्सा नहीं मिला, फलस्वरूप ये नाराज होकर जङ्गलमें चले गये। जहाँ जङ्गल आदि साफकर एक फर्स्टक्लासका बंगला बनवाकर रहने लगे। धीरे-धीरे खेती-बारी भी शुरू की। लेकिन इतना करनेपर भी स्थान उदास ही रहा। नतीजा यह हुआ कि कुछ और मकान बनवाये और उन्हें किराये पर दे दिया। इस प्रकार पहले-पहल मनुकी सन्तानोंकी आबादी यहाँ बस गयी। आजकल जैसे मालवीय नगर, लाला लाजपतराय नगर आदि बस रहे हैं ठीक उसी प्रकार काशीकी स्थापना हो गयी।

ऐसा अनुमान किया जाता है कि उन दिनों काशीकी भूमि किसी राजाकी अमलदारीमें नहीं रही वर्ना काश्यको भूमिका पट्टा लिखवाना पड़ता, मालगुजारी देनी पड़ती और लगान भी वसूल करते। चूँकि इस नगरीको आबाद करनेका श्रेय इन्हींको प्राप्त हुआ था, इसलिए लोगोंने समझदारीसे काम लेकर इसे काशी नगरी कहना शुरू किया। आगे चलकर इनके प्रपौत्रने इसे अपनी राजधानी बनाया। कहनेका मतलब परपोते तक आते-आते काशी नगरी राज्य बन गयी थी और उस फर्स्टक्लासके बंगलेको महल कहा जाने लगा था।

इन्ही काश्य राजाके वंशधर थे—दिवोदास। सिर्फ दिवोदास ही नहीं, महाराज दिवोदास। कहा जाता है कि एकबार इनपर हैहयवंशवाले चढ़ आये थे। लड़ाईके मैदानसे भागकर हजरत काशीसे भाग गये। भागते-भागते गङ्गा-गोमतीके संगमपर जाकर ठहरे। अगर वहाँ गोमतीने इनका रास्ता न रोका होता तो और भी आगे बढ जाते। जब उन्होंने यह अनुभव किया कि अब पीछा करनेवाले नहीं आ रहे है तब वे कुछ देरके लिए वहीं आराम करने लगे। जगह निछद्दम थी। बनारसवाले हमेशासे निछद्दम जगह जरा अधिक पसन्द करते है। नतीजा यह हुआ कि उन्होंने वही डेरा डाल दिया। कहनेका मतलब वही एक नयी काशी बसा डाली।

कुछ दिनोतक च्यवनप्राशका सेवन करते रहे, डण्ड पेलते रहे और भाँग छानते रहे। जब उनमें इतनी ताकत आ गयी कि हैहयवंशवालोंसे मोर्चा ले सके तब सीधे पुरानी काशीपर चढ़ आये और बातकी बातमें उसे ले लिया। इस प्रकार फिर काशिराज बन बैठे। हैहयवालोंके कारण काशीकी भूमि अपवित्र हो गयी थी, उसे दस अश्वमेध यज्ञसे शुद्ध किया और शहरके चारों तरफ परकोटा बनवा दिया ताकि बाहरी शत्रु झटपट शहरपर कब्जा न कर सकें। इसी सुरक्षाके कारण पूरे ५०० वर्ष यानी १८–२० पीढ़ीतक राज्य करनेके पश्चात् इनका वंश शिवलोकवासी हो गया।

काशीसे वाराणसी

इस पीढ़ीके पश्चात् कुछ फुटकर राजा हुए। उन लोगोंने कुछ कमाल नहीं दिखाया, अर्थात् न मन्दिर बनवाये, न स्तूप खड़े किये और न खम्भे गाड़े। फलस्वरूप उनकी खास चर्चा नहीं हुई। कमसे कम उन भले मानुषोंको एक-एक साइनबोर्ड जरूर कही गाड़ देना चाहिए था। इससे इतिहासकारोंको कुछ सुविधा होती।

ईसा पूर्व सातवीं शताब्दीमें ब्रह्मदत्त वंशीय राजाओंका कुछ हालचाल बौद्ध-साहित्यमें है, जिनके बारेमें बुद्ध भगवान्ने बहुत कुछ कहा है, लेकिन उनमेंसे किसी राजाका ओरिजनल नाम कही नहीं मिलता।

पता नहीं किसमें यह मौलिक सूझ उत्पन्न हुई कि उसने काशी नामको सेकेण्ड हैण्ड समझकर इसका नाम वाराणसी कर दिया। कुछ लोगोंका मत है कि वरुणा और असी नदीके बीच उन दिनों काशी नगरी बसी हुई थी, इसलिए इन दोनों नदियोंके नामपर इस नगरीका नाम रख दिया गया, ताकि भविष्यमें कोई राजा अपने नामका सदुपयोग इस नगरीके नामपर न करे। इसमें सन्देह नहीं कि वह आदमी बहुदूर-दर्शी था वर्ना इतिहासकारोंको, चिट्ठीरसोंको और बाहरी यात्रियोंको बड़ी परेशानी होती।

लेकिन यह कहना कि वरुणा और असी नदीके कारण इस नगरीका नाम वाराणसी रखा गया बिलकुल वाहियात है, गलत है और अप्रमाणिक है। जब पन्द्रहवीं शताब्दीमें यानी तुलसीदासजीके समय भदैनीका इलाका शहरका बाहरी क्षेत्र माना जाता था तब असी जैसे बाहरी क्षेत्रको वाराणसीमें मान कैसे लिया गया? दूसरे विद्वानोंका मत है कि असी नहीं, नासी नामक एक नदी थी जो कालान्तरमें सूख गयी, इन दोनों नदियोंके मध्य वाराणसी बसी हुई थी, इसलिए इसका नाम वाराणसी

रखा गया। यह बात कुछ हद्तक काबिले गौर है, लिहाजा हम इसे तसदीक कर लेते है।

भगवान् बुद्धके कारण काशीकी ख्याति आधी दुनियामें फैल गयी थी। इसलिए पडोसी राज्यके राजा हमेशा इसे हड़पना चाहते थे। जिसे देखो वही लाठी लिए सरपर तैयार रहने लगा।

नाग, शुंग और कण्व वाले हमेशा एक दूसरेके माथेपर सेगरी बजाते रहे। इन लोगोकी जघन्य कार्यवाहीके प्रमाण-पत्र सारनाथकी खुदाईमे प्राप्त हो चुके है।

ईसाकी प्रथम शताब्दीमे प्रथम विदेशी आक्रमक बनारस आया। यह था—कुषाण सम्राट् कनिष्क। लेकिन था बेचारा भला आदमी। उसने पडोसियोके चमचखमे फायदा जरूर उठाया पर बनारसके बहरी अलंग सारनाथको खूब सॅवारा भी।

कनिष्कके पश्चात् भारशिवों और गुप्त सम्राटोका रोब एक अर्सेतक बनारसवालोपर गालिब होता रहा। इस बीच इतने उपद्रव बनारसको लेकर हुए कि इतिहासके अनेक पृष्ठ इनके काले कारनामोंसे भर गये है।

मौखरी वंशवाले भी मणिकर्णिका घाटपर नहाने आये तो यहाॅ राजा बन बैठे। इसी प्रकार हर्षवर्द्धनके अन्तरमें बौद्ध धर्मके प्रति प्रेम उमडा तो उन्होने भी बनारसको घर दबाया।

आठवीं शताब्दीमे इधरके इलाकेमे कोई तगड़ा राजा नहीं था, इसीलिए बंगालसे लपके हुए पाल नृपति चले आये। लेकिन कुछ ही दिनो बाद प्रतिहारोंने उन्हे खदेड़ दिया और स्वयं १५० वर्षके लिए यहाॅ जम गये।

कन्नौजसे इत्रकी दूकान लेकर गाहड़वाले भी एकबार आये थे। मध्यप्रदेशसे दुधिया छाननेके लिए कलचुरीवाले भी आये थे। कलचुरियों

का एक साइनबोर्ड कर्दमेश्वर मन्दिर यहाँ 'कनवा' ग्राममें है। यही बनारसका सबसे पुराना मन्दिर है। इसके अलावा जितने मन्दिर है सब तीन सौ वर्षके भीतर बने हुए है।

वाराणसीसे बनारस

अबतक विदेशी आक्रमकके रूपमें वाराणसीमें कनिष्क आया था। जिस समय कलचुरी वंशके राजा गांगेय कुंभ नहाने प्रतिष्ठान गये हुए थे ठीक उसी समय नियालतगीन चुपकेसे आया और यहाँसे कुछ रकम चुराकर भाग गया। नियालतगीनके बाद जितने विदेशी आक्रमक आये उन सबकी अधिक कृपा मन्दिरोपर ही हुई। लगता है इन लोगोने इसके पूर्व कहीं इतना ऊँचा मकान नही देखा था। देखते भी कैसे? सरायमे ही अधिकतर ठहरते थे जो एक मंजिलेसे ऊँची नहीं होती थी। यहाँके मन्दिर उनके लिए आश्चर्यकी वस्तु रही। उनका ख्याल था कि इतने बड़े महलमे शहरके सबसे बड़े रईस रहते है, इसीलिए उन्हें गिराकर लूटना अपना कर्त्तव्य समझा।

नियालतगीनके बाद सबसे जबर्दस्त लुटेरा मुहम्मदगोरी सन् ११९४ ई० में बनारस आया। उसकी मरम्मत पृथ्वीराज पाँच-छः वार कर चुके थे, पर जयचन्दके कारण उसका शुभागमन बनारसमें हुआ। नतीजा यह हुआ कि उस खानदान का नामोनिशान हमेशाके लिए मिट गया।

सन १३०० ई० में अलाउद्दीन खिलजी आया। उसके बाद उसका दामाद बार्बकशाह आया, जिसे 'काला पहाड़' भी कहा गया है। सन् १४९४ ई० मे सिकन्दर लोदी साहब आये और बहुत कुछ लाद ले गये। जहाँगीर, शाहजहाँ और औरंगजेबकी कृपा इस शहरपर हो चुकी है। फर्रुखसियर और ईस्ट इण्डिया कम्पनीकी याद अभी ताजी है। पता नहीं, इन लोगोने बनारसको लूटनेका ठेका क्यों ले रखा था? लगता है, उन्हे लूटनेकी यह प्रेरणा स्वनामधन्य लुटेरे महमूद गजनवीसे प्राप्त हुई थी।

संभव है, उन दिनो बनारसमें काफी मालदार लोग रहा करते थे अथवा ये लोग बहुत उत्पाती और खतरनाक रहे हो। इसके अलावा यह समभव है कि बनारसवाले इतने कमजोर रहे कि जिसके मनमें आया वही दो धौल जमाता गया। खैर, कारण चाहे जो कुछ भी हो बनारसको लूटा खूब गया है, इसे धार्मिक और इतिहासके पण्डित दोनो ही मानते हैं। बनारसको लूटनेकी यह परम्परा फर्रुखसियरके शासनकाल तक बराबर चलती रही।

इन आक्रमकोमे कुछ लोग यहाँ बस गये। उन्हे वाराणसी नाम श्रुति कटु लगा, फलस्वरूप वाराणसी नाम घिसते-घिसते बनारस बन गया। जिस प्रकार रामनगरको आज भी कुछ लोग नामनगर कहते है। मुगलकालमे इसका नाम बनारस ही रहा।

बनारस बनाम मुहम्मदाबाद

औरंगजेब जरा ओरिजनल टाइपका शासक था। सबसे अधिक कृपा उसकी इस नगरपर हुई। उसे बनारस नाम बड़ा विचित्र लगा। कारण बनारसमे न तो कोई रस बनता था और न यहाँके लोग रसिक रह गये थे। औरंगजेबके शासनकालमे इसकी हालत अत्यन्त खराब हो गयी थी। फलस्वरूप उसने इसका नाम मुहम्मदाबाद रख दिया।

मुहम्मदाबादसे बनारस

मुगलिया सलतनत भी १८५७ के पहले उखड़ गयी। नतीजा यह हुआ कि सात समुद्र, सत्तर नदी और सत्ताइस देश पारकर एक हकीम शाहजहाँके शासन कालमे आया था, उसके वंशधरोने इस भूमिको लावारिस समझकर अपनी सम्पत्ति बना ली।

पहले कम्पनी आयी, फिर यहाँकी मालकिन रानी बनी। रानीके बारेमे कुछ रामायण प्रेमियोको कहते सुना गया है कि वह पूर्व जन्ममे त्रिजटा थी। संभव है उनका विश्वास ठीक हो। ऐसी हालतमे यह मानना

पड़ेगा कि ये लोग पूर्व जन्ममें लंकामे रहते थे अथवा बजरंगबलीकी सेनामें लेफ्ट-राइट करते रहे होंगे।

गौराग प्रभुओंकी 'कृपासे' हमने रेल, हवाई जहाज, स्टीमर, मोटर, साइकिल देखा। डाक-तार, कचहरी और जमींदारीके झगड़े देखे। यहाँसे विदेशोंमें कच्चा माल भेजकर विदेशोंसे हजारो अपूर्व सुन्दरियाँ मंगवाकर अपनी नश्ल बदल डाली।

ये लोग जब बनारस आये तब इन्होंने देखा—यहाँके लोग बड़े अजीब हैं। हरवक्त गहरेमें छानते हैं, गहरेबाजी करते है और बातचीत भी फर्राटेके साथ करते है। कहनेका मतलब हरवक्त रेस करते है। नतीजा यह हुआ कि उन्होने इस शहरका नाम 'बेनारेस' रख दिया।

बनारससे पुनः वाराणसी

ब्राह्मणोको सावधान करने वाले आर्योंकी आदि भूमिका पता लगाने वाले डाक्टर सम्पूर्णानन्दको यह टेढ़ा नाम पसन्द नही था। बहुत दिनोंसे इसमें परिवर्तन करना चाहते थे पर मौका नही मिल रहा था। लगे हाथ बुद्धकी २५०० वीं जयन्तीपर इसे वाराणसी कर दिया। यद्यपि इस नाम पर काफी बमचख मची, पर जिस प्रकार संयुक्तप्रान्तसे उत्तर प्रदेश बन गया, उसी प्रकार अब बनारससे वाराणसी बनता जा रहा है।

भविष्यमें क्या होगा ?

भविष्यमें वाराणसी रहेगा या नहीं, कोन जाने। प्राचीन कालकी तरह पुनः वाराणसी नामपर साफा-पानी होता रहे तो बनारस बन ही जायगा इसमें सन्देह नहीं। जिन्हें वाराणसी बुरा लगता हो उन्हें यह श्लोक याद रखना चाहिए—

खाक भी जिस जमींका पारस है,
शहर मशहूर यही बनारस है।

पाँचवीं शताब्दीमें बनारसकी लम्बाई ८ मील और चौडाई ३ मीलके लगभग थी। सातवीं शताब्दी आते-आते ६–६॥ मील लम्बाई और २॥–३ मील चौडाई हो गयी।

ग्यारहवी शताब्दीमें न जाने क्यो इसका क्षेत्रफल ५ मीलमें हो गया। इसके बाद १८८१ ई० में पूरा जिला एक हजार वर्ग मीलमें हो गया।

अब तो वरुणा-असीकी सीमा तोडकर यह आगे बढ़ती जा रही है; पता नहीं रबड़की भाँति इसका घेरा कहाँ तक फैल जायगा। आज भी यह माना जाता है कि गंगाके उस पार मरने वाले गदहा योनिमे जन्म लेते है, जिसके चश्मदीद गवाह शरच्चन्द्र चटर्जी थे। लेकिन अब उधरकी सीमाको यानी मुगलसरायको भी शहर बनारसमें कर लेनेकी योजना बन रही है। अब हम मरनेपर किस योनिमे जन्म लेंगे, इसका निर्णय शीघ्र होना चाहिए, वर्ना इसके लिए आन्दोलन -सत्याग्रह छिड़ सकता है।

बनारसमे शहरी क्षेत्र उतना ही माना जाता है जहाँकी नुक्कडपर उसके गण अर्थात् चुंगी अधिकारी बैठकर आने-जाने वालोंकी गठरी टटोला करते है। इस प्रकार अब बनारस शीघ्र ही मेयरके अधिकारमे आ जायगा।

: बनारस—एक दिग्दर्शन :

सिर्फ काशी नगरी ही तीन लोकसे न्यारी नही है, बल्कि यहाँके लोग, उनका रहन-सहन, उनके आचार-विचार, यहाँ तक कि यहाँकी सरकारी–गैर सरकारी संस्थाएँ भी अपने ढंगकी निराली है। उदाहरणके लिए बनारस नगरपालिकाको ही ले लीजिये। इस नगरीका निरालापन कोई मुफ्तमें न देख जाय, इस गरजसे वह प्रत्येक यात्री पीछे एक आना प्रवेश-कर लेती है। जहाँ तक प्रवेश-करका सवाल है, हमें एतराज़ नहीं है। लेकिन पालिका 'निकासी कर' भी लेती है। कहनेका मतलब यह कि अगर कोई बाहरी आदमी बनारस आये और आकर वापस चला जाय तो उसे दो आनेकी चपत पड़ जाती है। शायद आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि घरके लोग अर्थात् खास बनारसके वाशिन्दे भी इस करसे मुक्त नही है। चूंकि यह कर रेलवेके माध्यमसे लिया जाता है, इसलिए हम आप नहीं जान पाते। काशी जैसी नगरीके लिए क्या यह नियम निरालेपनका द्योतक नहीं है?

सफाई पसन्द शहर

इस 'कर'की बाबत कहा जाता है कि यह इसलिए लिया जाता है कि तीर्थस्थान होनेकी वजहसे यहाँ गन्दगी काफी होती है। लिहाजा सफाई खर्च (बनाम जुर्माना) तीर्थयात्री-करके रूपमे लिया जाता है। बनारस कितना साफ-सुथरा शहर है, इसका नमूना गली-सड़के तो पेश करती ही हैं, अखबारोके 'संपादकके नाम पत्र' वाले कालम भी 'प्रशंसा-शब्दो'से रगे रहते है। माननीय पण्डित नेहरू तथा स्वच्छ काशी आन्दोलनके जन्मदाता आचार्य विनोबा भावे इस बातके कन्फर्म्ड गवाह हैं।

खुदा आबाद रखे देशके मंत्रियोको जो गाहे-बगाहे कनछेदन, मूंड़न, शादी और उद्घाटनके सिलसिलेमें बनारस चले आते है जिससे कुछ सफाई हो जाती है; नालियोमे पानी और चूनेका छिड़काव हो जाता है।

निराली भूमि

अगर आप कभी काशी नहीं आये है तो आपको लिखकर सारी बाते समझायी नहीं जा सकतीं। अगर आये हैं और इसका निरालापन नही देखा है तो यह आपके लिए दुर्भाग्यकी बात है। शायद आप यह सवाल करें कि आखिर बनारसमे इतना क्या निरालापन है जिसके लिए ढिंढोरा पीटा जा रहा है, तो अर्ज है—

विज्ञानने यह सिद्ध कर दिया है कि पृथ्वी शून्यमें स्थित है और वह सूर्यके चारो तरफ चक्कर काटती है। लेकिन इस तथ्यको भारतवासी नही मानते। उनका 'विज्ञान' यह कहता है कि पृथ्वी 'शेषनागके फन' पर स्थित है और स्वयं सूर्य उसके चारो ओर चक्कर काटता है। हमने कभी पश्चिम, उत्तर या दक्षिणसे सूरज उगते नही देखा। यह सब विज्ञानकी बाते चण्डूखानेकी गप्प है। एक बेपेंदीका लोटा जब बिना सहारेके इधर-उधर लुढ़कता है तब पृथ्वी जैसी भारी गोलाकार वस्तु (बकौल पश्चिमी विज्ञान) बिना किसी लाग (सहारे) के कैसे स्थिर रह सकती है?" बताइए, है कोई वैज्ञानिक-खगोलवेत्ता जो उत्तर देनेका साहस करे!

बनारस वालोका दृढ़ विश्वास है—पृथ्वी शेषनागके फनपर स्थित है पर उनका बनारस भगवान् शंकरके त्रिशूलपर है। शेषनागसे उसका कोई मतलब नहीं। इसीलिए काशीको तीन लोकसे न्यारी कहा गया है, यहाँ गंगा उत्तरवाहिनी है, यहाँ कभी भूकम्प नहीं आता। कभी-कभी शंकर भगवान् जब आराम करनेके लिए त्रिशूलपर पीठ टेक देते है तब यहाँकी जमीन कुछ हिल भर जाती है। अधिक दूर क्यो, काशी शंकरके त्रिशूल पर है या नही, इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यहाँकी भूमिकी बनावट है।

होता है। काशीकी लोक-कलाके दर्शन सोरहिया तथा रथयात्राके मेलेमे ही होते है। लक्साकी अधिकाश रामलीला यही होती है।

पास ही विश्वविख्यात थियोसोफिकल सोसायटी है। यहॉ बनारसके बालक और बालिकाऍ शिक्षा प्राप्त करती है। सोसायटीके दक्षिण भागमे वैद्यनाथ और बटुकभैरवका मन्दिर है। इसी मन्दिरके समीप सेण्ट्रल हिन्दू-कालेज, बड़ी गैबी आदि प्रसिद्ध स्थान हैं।

कालेजसे कुछ दूर आगे खोजवॉ बाजार है, जो नवाबोके खोजाओके रहनेके कारण मुहल्ला बन गया। आजकल अनाजकी मण्डी है। पास ही शहरको आलोकित करनेवाला तथा जलदान करनेवाला 'बिजली घर' और 'पानीकल' हैं।

थोड़ा ही आगे बढ़ने पर अन्तरराष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त अतिथिशाला दिखाई देगी। यहॉ संसारके ख्यातिप्राप्त राजनीतिज्ञ लोग आकर मेहमान-बाजी करते है। बनारसवालोको अपनी इस कोठीपर नाज है जो संसारके महान् पुरुषोको अपने यहॉ ठहराकर भारतीय संस्कृतिका परिचय देता है। यह भवन है—महाराजकुमार विजयानगरम् यानी 'ईजा नगर'की कोठी।

यहॉसे कुछ दूर दुर्गाकुण्ड है, जहॉ रामकी सेनाऍ ही नहीं बल्कि पास ही सेनापति महोदयका भी भवन है। दुर्गाकुण्डका मन्दिर रानी भवानी और वानर-सेनापति संकटमोचनका मन्दिर गोस्वामी तुलसीदासजी द्वारा स्थापित हुए हैं। संकटमोचनके मन्दिरमें नित्य सुन्दरकाण्ड और हनुमान चालीसाके पाठ करनेवाले भक्तोंकी भीड लगी रहती है। खास-कर इम्तहानके समय विद्यार्थियोकी भीड़ बढ जाती है। यूनिवर्सिटीके छात्रोंका विश्वास है, 'संकटमोचन बाबा' बिना पढे-लिखे परीक्षाकी वैतरणी पार कर जाते हैं। छात्र-छात्राऍ परस्पर प्रेमके स्थायित्वकी शपथ भी यहीं लेते हैं। यहॉका दलवेसन बहुत गुणकारी, प्रभावशाली होता है।

यह है—लंका; रावणवाली नहीं—काशीकी अपना निजी। आगे भारत प्रसिद्ध शिक्षा संस्था विश्वविद्यालय है। पास ही नगवा घाट है—

जहाँ बाबू शिवप्रसाद गुप्तकी कोठी है। यहीं पर एकबार स्वामी करपात्रीजी ने यज्ञ करवाया था।

यह है पुष्कर तीर्थ। इसके आगे अस्सी और कुरुक्षेत्रका तालाब है। सूर्य ग्रहणके दिन तालाबमें धर्मप्राण व्यक्ति स्नानके नामपर कीच स्नान करते है। आगे भदैनी है और बगलमें तुलसीघाट, जहाँ तुलसीदासका खडाऊँ और उनके द्वारा स्थापित हनुमानजीका मन्दिर दर्शनीय है। बनारसका यह मुहल्ला साहित्यकोका भी एक गढ़ है। सोलहवी शताब्दीमें यह स्थान काशीका बाहरी अंचल माना जाता था।

यह है हरिश्चन्द्र घाट। कुछ लोग इसे काशीका प्राचीन श्मशान मानते है, पर यह बात गलत है। पहले यहाँ डोमोकी बस्ती थी। डोम लोग महाश्मशानमें अपने परिवारकी लाश नहीं जला पाते थे। यह लोग अपनेको राजा हरिश्चन्द्रके वंशज मानते थे इसीलिए यह प्रचारित होता रहा कि यही काशीका प्राचीन श्मशान है, जहाँ राजा हरिश्चन्द्र श्मशानके रक्षक बने रहे।

हरिश्चन्द्र घाटके आगे काशीकी सबसे खड़ी सीढ़ीवालाघाट केदारघाट है। यहाँका घण्टा सभी मन्दिरोंके घण्टोसे तेज आवाजमे गूँजता है। यहाँ से कुछ दूर पर तिलभाण्डेश्वर महादेवका मन्दिर है। कहा जाता है कि ये महादेवजी सालमें तिल बराबर वजनमें बढ़ते है। पता नहीं, इसके पूर्व इन्हे कभी तौला गया था या नहीं, वर्ना ये कितने प्राचीन है, इसका पता पुरातत्त्ववाले बता देते।

यह है मदनपुरा। संभवतः प्राचीनकालमे यहीं मदनका दहन हुआ था। बनारसी साडियोंके विश्व-विख्यात कलाकार इसी मुहल्लेमे रहते है।

अब हम गोदौलिया आ गये। प्राचीन कालमे यहाँ गोदावरी नदी बहती थी। गोदावरी तीर्थ स्थानके ऊपर आजकल मारवाड़ी अस्पताल स्थापित है। यहींसे एक रास्ता दशाश्वमेध घाटकी ओर गया है। आगे बड़ा बाजार है, बड़े-बड़े होटल और शर्बतोंकी दूकाने है। यहाँ काशीकी

तक लंगड़ी भिन्नका रहस्य (छोटे, मझले और बड़े कोष्ठका रहस्य) नहीं समझ सका, ठीक उसी प्रकार टाउनहाल क्या है, समझ नहीं सका। मुमकिन है, आप भी न समझ सके।

इस स्थानसे कुछ आगे भारत प्रसिद्ध संस्था 'काशी नागरी प्रचारणी' सभा है। बाबा विश्वनाथके कोतवालका भवन और कोतवाली थानाका घनिष्ठ सम्बन्ध यहीं है। बनारसकी सबसे बड़ी अनाजकी मण्डी विश्वेश्वर-गंज भी यहीं है।

इस मुहल्लेके बारेमें कुछ लोगोका मत है कि प्राचीन कालमें काशीका प्रमुख बाजार था। यहींपर विश्वनाथजीका मन्दिर था जिसे मुसलमानोंने तोड़ दिया। संभवतः इसीलिए इस मुहल्लेका नाम विश्वेश्वरगंज है। प्राचीन ग्रन्थोंके अध्ययनसे मालूम होता है कि तुगलक कालके पूर्व शिवलिंगका नाम देवदेव स्वामी और अविमुक्तेश्वर था। विश्वनाथ नाम १२ वीं शताब्दीके बाद प्रचलित हुआ है। पास ही भीतरी महालमें गोपालजीका मन्दिर और विन्दुमाधवका धरोहरा है। यहीं एक मकानमें छिपकर गोस्वामी तुलसीदास वाल्मीकि रामायणको मौलिक रूप दे रहे थे।

विश्वेश्वरगंजसे एक सड़क अलईपुर मुहल्लेकी ओर गयी है। यहाँ एक मुहल्ला आदमपुरा है, पता नहीं बाबा आदमसे इसका कोई सम्बन्ध है या नहीं।

कुछ दूर आगे मछोदरी पार्क है जहाँ राजा बलदेवदास द्वारा निर्मित अस्पताल और घण्टाघर है। राजा साहब दान देनेमें जितना सक्रिय रहे, उतना ही सक्रिय घण्टा टँगवानेमें रहे। बनारसमे उन्होंने कई जगह घण्टा टँगवाया है। घण्टा टँगवानेका क्या महत्त्व है, इसका कोई उल्लेख यद्यपि काशी खण्डमें नहीं है पर सुना गया है कि आपने लन्दनमें भी घण्टाघर बनवाया है। ज्ञातव्य रहे कि बनारसमें घड़ीघरको, जहाँ घण्टेकी आवाजसे समयकी सूचना मिलती है, घण्टाघर कहते हैं। मछोदरी बाग प्राचीनकाल-में मत्स्योदरी तीर्थ कहलाता था।

आगे राजघाट है। यह स्थान शहरका अन्तिम भाग है। इस भूभागका बनारसके इतिहासमे महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्राचीनकालमे यहाँ अनेक राजाओंकी आवास भूमि रही। वे सब गंगाकी गोदमे चले गये। अब यहाँ केवल खण्डहर रह गये है जिसे सरकार खुदवाकर कुछ पुरातत्त्वविदोंकी कचूमर निकालना चाहती है। इससे कुछ लोगोंको चण्डूखानेकी दून हॉकनेका मौका मिलेगा।

अब हमे पुनः शहरकी ओर मुडना है और शहरका प्रमुख भाग देखना है। इसलिए अब पुनः हम मैदागिनके पास आते है और यहींसे दक्षिणकी ओर बढ़ते है।

मैदागिनसे कुछ दूर आगे बढ़नेपर कर्णघण्टा नामक स्थान है। कहा जाता है, यहाँका मन्दिर गागेयका पुत्र यशकर्णने बनवाया था। इतिहासकारोंकी बहुत-सी अटकल पच्चूवाली बाते इसलिए स्वीकार करनी पड़ती है कि यह सब घटनाएँ जब हुई तब हम बनारसमे नही थे। यहाँसे कुछ दूर आगे बाबा विश्वनाथके थर्ड डिप्टी सुपरिण्टेण्डेण्ट आफ पुलिस आसभैरव रहते है। काशीके प्रमुख उद्योग धन्धोंकी सामग्रियाँ इस इलाकेमे मिलती है। मसलन लकड़ीके विभिन्न सामान, पीतलके बर्तन, जरी और सोने-चाँदीके जेवरात इत्यादि। इसी क्षेत्रमे एक जगह कन्नौज, जौनपुर-गाजीपुरका इलाका बस गया है। दूसरी ओर बनारसका प्रमुख-व्यवसाय बनारसी साडियोंका रोजगार होता है। पुस्तक व्यवसायी, समाचार पत्र विक्रेता, मंगलामुखियोकी हाट और फलवालोकी दूकान इसी क्षेत्रमे हैं।

यह चौकका फौव्वारा है। पहले यहाँ फौव्वारा लगा था, अब वहाँ बनारस स्टेट बैंक है। बनारसका सबसे जानदार इलाका यही है। यहाँ अजीब बाते, अजीब शक्ले और अजीब दृश्य देखनेको मिलते है।

कविराज कालीपदो दे का आश्चर्य मलहम जो १०१ बीमारियोंमें फायदा पहुँचाता है—आवाज लगाते हुए बगलमे टीनका डब्बा लिए बंगाली बाबू टहलते हैं। आँखोंमें चश्मा पहने और हाथमे सिर्फ एक

चश्मा लिए—'एक चश्मा' की आवाज देते हुए बडे मियाँ कुछ लोगो की आँखे पढ़ते नजर आते है।

जल जीरेका पानी–आमका पन्ना बेचनेवालोकी गाड़ी, गंडेरी मेरी अव्वल, पैसा लेना डब्बल, दिया सलइया पैसेमे, सुइया चार मुनाफेमे आदि सामाने बिकती है।

कुछ दूकानदार यहाँ हर माल छःछः पैसेमे बेचते है क्योकि कम्पनी-का माल वे लुटा रहे है। अब आपको गरज हो तो खरीदिए। गंजी भी छः पैसेमे, फाउण्टेन पेन भी छः पैसेमे मिलती है।

एक ओरसे एक बन्द कनस्तर लिए "गरेम है जी" की आवाज आती है। जबतक आप उनसे सामान न खरीदे तबतक आप यह नहीं समझ पाइयेगा कि क्या गरम है–वातावरण, मौसम, वे स्वयं या बन्द कनस्तरका सामान। आजसे तीन वर्ष पूर्व सडकपर "केसरिया तर हव राजा" की आवाज लगाता हुआ एक आदमी झूमता हुआ नजर आता था। उसकी गैर मौजूदगी आजके बच्चोको खलती है। नरम-गरम, नरम-गरमकी आवाज लगाता हुआ एक आदमी बड़ी तेजीसे लाल साइनबोर्ड पहने आपके बगल-से गुजर जायगा।

यह है परमानेण्ट हरे राम-हरे रामकी फैक्टरी। जहाँ लाउडस्पीकरसे शामके समय भक्ति प्रदर्शन होता है। सामने ही बीबी रोजाकी मसजिदके बारेमे कहा जाता है कि पहले यहाँ विश्वनाथ मन्दिर था। जिसे कुतुबद्दीन ऐबकने तोडा था। नीचे ज्ञानवापीकी प्रसिद्ध मसजिद है जिसे औरंगजेबने निर्मित कराया था।

यह है सत्यनारायण मन्दिर। जहाँ श्रावणमे भगवान् झूला झूलते है। उनका शृगार देखने काबिल होता है। आगे बाँस फाटक है।

बनारसके मुहल्लोंका नाम देखकर अनुमान किया जाता है कि प्राचीन कालमें यह नगर अरब देशोंकी भाँति बन्द नगरी थी जिसके चारो तरफ

फाटक थे। मसलन हाथी फाटक, बाँस फाटक, शेख सलीमका फाटक, रंगीलदासका फाटक और फाटक सुखलाल साहु आदि आठ फाटक थे।

अब हम गोदौलियापर आ गये। इस प्रकार सारा शहर घर बैठे देख लिया। क्या जरूरत कि आप बनारस आये और दो आना प्रवेश कर दें। हाँ, यदि गंगा स्नान, विश्वनाथ दर्शन अथवा शहर देखनेका काफी शौक है तो हमे एतराज नही। अगर और निरालापन देखना हो तो यहाँके धनुषाकार घाट, धरोहरका एक खम्भा, यहाँकी गलियाँ और यहाँके मेले देखें। बस सारा बनारस आपकी नजरोंसे गुजर जायगा।

: बनारसकी गलियाँ :

जो लोग बम्बई, कलकत्ता और दिल्ली जैसे शहरोमें एकबार हो आए है अथवा किसी कारणवश अब वही रहने लग गए हैं, ऐसे लोग जब कभी किसी छोटे शहरमे आयेगे तो उस शहरके बारेमे इस तरह बातचीत करेंगे मानो परमाणु बमका भेद बता रहे हो। चूँकि हम कभी दिल्ली, बम्बई गये, नहीं, इसलिए हम उनकी बाते मुँह बाकर इस तरह निगल जाते थे जैसे बरसातमें छिपकलियाँ पतिंगोको। कभी-कभी हम यह महसूस करने लगते, नाहक हमारी पैदाइश बनारस जैसे शहरमे हुई। काश! हम बंबई, कलकत्ता जैसे शहरोमे पैदा हुए होते वहाँकी ऊँची-ऊँची इमारतोसे नीचेकी ओर झाँककर देखते कि आदमी अंगूठेसे कितना बडा होता है, चौपाटी और मलाबार हिलसे समुद्रकी अजगर सरीखी लहरे गिनते।

इन शहरोकी तारीफमे खास चर्चा मकानो और सडकोके बारेमे होती है। वहाँके मकान इतने ऊँचे है कि सडकपर खडे होकर ऊपर देखो तो टोपी गिर जाय। सडके इतनी खुशनुमा है कि पैर फिसल जाते है। चौड़ाई तो इतनी कि यहाँकी तीन एक ही में घुस जॉय। गलियाँ तो वहाँ है ही नहीं, और जो है भी वे यहाँकी सड़कोकी नानीसे कम नहीं। धीरे-धीरे उनकी बातचीतका असर इस कदर होता है कि हम यह फरमान जारी कर देते है—इस साल चाहे जैसे हो कलकत्ता, बम्बई जाकर ही रहेंगे। हमारे इस एलानको सुनकर हजरत यू मुँह सिकोड लेते जैसे १०० ग्रेन कुनैनका मिक्स्चर पी लिया हो। मस्तकपर मुट्ठी भर बल डाले इस अन्दाजसे कह उठते—'खुदा झूठ न बोलाए। आज तीन साल हो गये

वहाँ रहते, पर अभीतक हम यह नही जान सके कि कौन सड़क किधर जाती है। फलाँ जगह जानेके लिए किन-किन सड़कोसे या किस बसपर सवार होकर जा सकते है—नही बता सकते। रातको कौन कहे दिन को भी हम अक्सर रास्ता भूल जाते है। फिर आप जैसे आदमी जायँ तो खो जानेमे कोई शुबहा नही। दाये-बायेका ख्याल न रखे तो हवालातमें बन्द हो जायँ या सीधे नरकका टिकट कटाये। अगर आप किसी ठग या सुन्दरीके चक्करमें आ गये तो बेड़ा गर्क ही समझिए।'

चूँकि हम अपने माँ-बापकी इकलौती संतान और अपनी बेगमके इकलौते मियाँ है, इसलिए मुफ्तमे खो जाना या हवालातमें बन्द होकर नरकका टिकट कटाना कतई पसंद नही करते। जबकि हम पैदा होते ही अपने बापको यह सर्टिफिकेट दे चुके है कि आपकी गैर मौजूदगीमे मै और मेरी औलाद आपको पितृ पक्षके दिनो पानी जरूर देंगे। नतीजा यह होता है कि हम अपनी फैसला चुपचाप वापस ले लेते है, फिर कभी उधर जायंगे यह ख्याल ख्वाबमे भी नही लाते।

यह अज़ीब इत्तिफाककी बात है कि एकबार हमारे घर एक नजूमी आया और उसने बताया कि मै बम्बई, कलकत्ता और दिल्ली जैसे शहरो-में जरूर जा सकता हूँ। बात ठीक निकली। वह अरमान जो कि कुचल दिया गया था, पुष्पित हो उठा। हम गये और वापस भी चले आये। न कही खोये, न कहीं पैर फिसला। न कहीं टोपी गिरी, न हवालातमे बन्द हुए। ठग और सुन्दरीसे भेट हुई, पर हम उनकी चकल्लसमे नहीं आये। लेकिन जो मजा बनारसकी गलियोमे है, वह मजा दुनियाँके किसी पर्देमे नही है। जो आजादी यहाँके हर गली-कूँचेमे है उसे ये सात जन्ममे नहीं पा सकते। बनारसी गलियोका कुछ मजा सिर्फ मथुरामे मिल सकता है।

बनारसकी सड़कें

बनारसमें जितनी सड़कें है, उससे सौगुनी अधिक गलियाँ है। यदि आप बनारसकी सड़कोंका मुआइनाकर बनारसके बारेमे फैसला देंगे तो यह सेंटपरसेंट अन्याय होगा। असली मजा तो बनारसकी गलियोंमे दुबका हुआ है। बनारसी भाषामे उन्हे 'पक्का महाल'—'भीतरी महाल'—कहते हैं। काशी खंडके अनुसार विश्वनाथ खंड—केदारखंडकी तरह वर्तमान बनारस भी दो भागोंमें बसा हुआ है—भीतरी महाल (पक्का महाल) और बहरी तरफ। आपने सिर्फ बाहरी रूप अर्थात् कच्चा रूप देखा है। पक्का रूप देखना हो तो गलियोंमे टहरान दीजिए।

यहाँकी सड़कें अभी जुमा-जुमा आठ रोज हुए बनी है यानी 'लली' है। बेचारी ठीकसे सूख भी नहीं पायी है। यकीन न हो तो किसी दिन गर्मी-के मौसममे पैदल चलकर देख लीजिए। सुकतल्ला सडकपर चिपककर रहा जायगा और हवाली जूता आपके पैरोंमे। यदि जूता काफी मजबूत हुआ तो बनारसकी धरती इस कदर प्यारसे आपके कदमोंको चूमेगी कि उससे अपना दामन छुड़ानेमे आपको छट्ठीका दूध याद आ जायगा। अगर आपकी यह कसरत बनारसी-पट्ठोंने देखी तो—"बोल छमाना छे—खिचले रहे पट्ठे—जाये न पावे' फिकरा कस ही देंगे। कहनेका मतलब यह कि बनारसकी सडकें हर पैदल चलनेवाले मुसाफिरोंसे बेहद मुहब्बत करती है। इनकी मुहब्बत हर मौसममे अलग ढंगसे पेश आती है। बरसातमे इनकी होली देश विख्यात है और वसंत ऋतुमे जब ये आपपर 'गुलाल' बरसाने लगती है तो मत पूछिए! आनन्द आ जाता है।

स्कूलोंमें आप ज्योमेट्रीकी शिक्षा पा चुके होंगे। मुमकिन है कि उसकी याद धुंधली हो गयी हो। यदि आप बनारसकी सड़कोंपर टहलान दें तो मजबूरन ज्योमेट्रीके प्रति दिलचस्पी पैदा हो जायगी। जब कोई बैलगाड़ी, ट्रक, जीप या टैक्सी इन सडकोंपरसे गुजरती है तब हर रंगकी हर ढंगकी

समानान्तर रेखाएँ त्रिभुज, चतर्भुज और षट्कोणके ऐसी अजीब गरीब नक्शे बन जाती है कि जिसका अंश बिना परकालकी सहायताके ही बताया जा सकता है। नगरपालिकाको चाहिए कि वह अपने यहाँके अध्यापकोको इस बातका आदेश दे दे कि वे अपने छात्रोको सडकपर बने हुए इस ज्योमेट्रीका परिचय अवश्य करा दे। सुना है काशीके कुछ माडर्न आर्टिस्ट इन नक्शोके सहयोगसे प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके है।

यहाँकी सड़के डाक्टरोंकी आमदनी भी बढ़ाती है। यही वजह है कि अन्य शहरोसे कहीं अधिक बनारसमे डाक्टर है। यदि आप किसी रिक्शे पर सवार होकर एकबार शहर परिक्रमा कर ले तो इसका अनुभव हो जायगा। बनारसके बाशिंदे तो इसके आदी हो गये है। यहाँके कुछ गुरूओका, (जो लंदन, पेरिस और अमेरिका हो आये है) कहना है कि उन्हे हवाई जहाज या समुद्री जहाजमे चक्कर देनेवाली बीमारी इन सड़कोके हिचकोले खानेके कारण नही हुई। इसलिए आपको जब कभी विदेश जानेको जरूरत हो तो एकबार बनारस आकर रिक्शेकी सवारीपर हिचकोले जरूर खाइए। यहाँ हर पाँच कदमपर गड्ढे है। जब इन गड्ढोंमे रिक्शेका पहिया फँसेगा तब पेटका सारा भोजन कण्ठतक आ जायगा। दूसरे दिन बदनमे इतना दर्द हो जायगा कि आपको डाक्टरका दरवाजा खटखटाना पड़ेगा।

अंग्रेजी शासनकालमे जब कोई गवर्नर या अधिकारी काशी दर्शनके लिए आता था तब उसे खास सडकोसे ले जाया जाता था। जब लगातार लोग यहाँ आने लगे तब कैण्टसे नदेसरतक और कैण्टसे पानीकलतक सीमेटकी सडके बना दी गयीं। विश्वविद्यालयके छात्र खुराफाती होते ही है। एकबार उत्तर प्रदेशके भूतपूर्व गवर्नर माननीय कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशीजीकी मोटर लंकासे अस्सीकी ओर इन लोगोने चलवा दी। नतीजा यह हुआ कि नगरपालिकाने उस सड़ककी खाजको दूसरे साल मलहम पट्टी लगाकर कुछ

हद तक ठीक कर दिया। भगवान् करे हर प्रातके गवर्नर यहाँ आवे और इस प्रकार प्रत्येक सडकका खाज-एक्जीमा दूर होता रहे।

गलियोंकी विशेषता

काशीमें सड़कोका कोई महत्व नहीं है, इसलिए बहुत कम लोग सडकों पर चलते है। सडकोका उपयोग जुलूस निकालते समय होता है। उसपर पैदलसे अधिक लोग सवारीसे चलते हैं। इधर कुछ ऐसे लोग (शायद मेटल हास्पिटलसे छूटकर) आ गये है जो सड़कोको महत्व देने लग गये है। ऐसे लोग लबे सडक 'मकान बिकाऊ है,' 'दुकान खाली है,' अथवा' भाडे पर लेना है'—का विज्ञापन छपवाते है।

काशीकी अधिकांश गलियाँ ऐसी है जहाँ सूर्यकी रोशनी नहीं पहुँचती। कुछ गलियाँ ऐसी है जिनमेसे दो आदमी एक साथ गुजर नही सकते। इन गलियोंकी बनावट देखकर कई विदेशी इंजीनियरोकी बुद्धि गोल हो गयी थी! जो लोग यह कहते है कि बंबई-कलकत्ताकी सड़कोपर खो जानेका डर रहता है, वे काशीकी गलियोंका चक्कर काटे तो दिन भरके बाद शायद ही डेरेतक पहुँच सकेंगे। आज भी ऐसे अनेक बनारसी मिलेंगे जो बनारसके सभी गलियोंको छान चुके हैं, कहनेमें दाँत निपोर देंगे।

इन गलियोसे गुजरते समय जहाँ कहीं चूके तुरन्त ही दूसरी गलीमे जा पहुँचेंगे। कलकत्ता, बंबईकी तरह सड़ककी मोड़पर अमुक दूकान, अमुक निशान रहा—याद रहनेपर मंजिलतक पहुँच सकते है—पर बनारसमे इस तरहके निशान-दूकान-साइनबोर्ड भीतरी महालमे नही मिलेंगे। नतीजा यह होगा कि काफी दूर आगे जानेपर रास्ता बन्द मिलेगा। उधरसे गुजरनेवाले आपकी ओर इस तरह देखेंगे कि यह 'चाँइया' इधर कहाँ जा रहा है। नतीजा यह होगा कि आपको पुनः गलीके उस छोरतक आना

पडेगा जहाँसे आप गडबड़ाकर मुड गये थे। कुछ गलियाँ ऐसी है कि आगे बढ़नेपर मालूम होगा कि आगे रास्ता बन्द है, लेकिन गलीके छोरके पास पहुँचनेपर देखेगे कि बगलसे एक पतली गली सडकसे जा मिली है। अक्सर इन गलियोमें जब खो जानेमे आता है, खासकर रातके समय, तब लगता है जैसे ऊँचे पहाड़ोकी घाटियोमें खो गये है। इन गलियोमें लोग चलते फिरते कम नजर आते है। जो नजर भी आते है, वे उस गलीके बारेमें पूर्ण विवरण नहीं बता सकते। हो सकता है, वह भी आपकी तरह चक्कर काट रहे हो। गलियोका तिलस्म इतना भयंकर है कि बाहरी व्यक्तिको कौन कहे अन्य लोग भी जानेमे हिचकते है। कुछ गलियाँ ऐसी है जिनसे बाहर निकलनेके लिए किसी दरवाजे या मेहराबदार फाटकके भीतरसे गुजरना पडता है।

बंबई, कलकत्ताकी तरह यहाँकी सड़कोमे चारसे अधिक रास्ते नहीं है, पर गलियोमे चारसे चौदहतक रास्ते है। किस गलीसे आप तुरन्त घर पहुँच सकते है, यह बिना जाने या बिना पूछे नही जान सकते। जिस गलीसे आप घर पहुँच सकते है, उसीसे आप श्मशान या नदी किनारे भी जा सकते है।

गलियोंका नगर

शैतानकी आतकी भाति यह भूल-भुलैया संसारका एक आश्चर्यजनक दर्शनीय स्थान है। इन गलियोमे कितनी आजादी है। नंगे घूमो, गमच्छा पहिने चलो, जहाँ जी में आये बैठो और जहाँ जी आये सो जाओ। कोई बिगड़ेगा नही, भगायेगा नही और न डाटेगा। गावटीका गमच्छा या सिल्कका कुरता पहने बनारसी रईस भी इन गलियोमे छाता लगाये चलते है। शायद आपको जानकर आश्चर्य होगा कि जिस गलीमें सूर्यकी रोशनी नही पहुँचती, बरसातका मौसम नहीं है, फिर भी लोग वहाँ छाता लगाकर क्यो चलते है? कारण है—गन्दगी। मान लीजिए आप

बाजारसे लौट रहे हैं, अचानक ऊपरसे कूडेकी बरसात हो गयी। यह बात अच्छी तरह जान लीजिए—बनारसी तीन मंजिल या चार मंजिलेपरसे बिना नीचे झाके थूक सकता है, पानी फेंक सकता है और कूडा गिरा सकता है। दूकान झाड बटोरकर आपके चेहरेपर सारा गर्द फेंक सकता है। यह उसका जन्म-सिद्ध अधिकार है; नीचे इस सत्कार्यसे घायल व्यक्ति जब गालियाँ देता है तब सुनकर भाई लोग प्रसन्न हो उठते हैं। उनका रोम-रोम गाली देनेवालेको साधुवाद देगा। अगर कहीं वे सज्जन चुपचाप चले गये तो इसका उन्हें अपार दुःख होगा और उस दुःखको मिटानेके लिए मुखसे अनायास ही निकल जायगा—'मुर्दार निकसल !'

किसी-किसी गलीमें बनारसी रईसोका पनाला इस अदासे चूता है कि फुहारेका मजा आ जाता है! गरमीके दिनोंमे रातको ऐसी गलियाँसे गुजरना और खतरनाक होता है। सोते समय 'शंका समाधान' के लिए बनारसी अपनेको अधिक कष्ट नही देगा। परिणाम स्वरूप छतके पनालेसे आपपर 'शुद्ध गगाजल' बरस सकता है। गुस्सा उतारनेके लिए ऐसे घरोंमे आप घुसनेकी हिम्मत नही कर सकते। एक तो बाहरका भारी दरवाजा बन्द है, दूसरे भीतर जानेपर भी यह पता चलना मुश्किल है कि यह सत्कार्य किसने किया है? मुँह आपका है, गालियाँ बक लीजिए और राह लीजिए, बस! खासकर नंगे पैर चलना तो और भी मुश्किल है। घरके बच्चे 'दीर्घशका' गलियोंमे रातको कर देते है।

अगर इन गलियोमे भगवान् शकरके किसी मस्ताने वाहनसे भेट हो गयी अर्थात् उसने नाराज होकर आपको हुरपेटा तो जान बचाकर भागना मुश्किल हो जायगा। खासकर उन गलियोंमे जो आगे बन्द मिलती है। क्योंकि आप पीछे भाग नही सकते, आगे रास्ता बन्द है, बगलके सभी मकानोंमे भीतरसे भारी साकल लगा है और इधर साड़ महाराज हुरपेटे आ रहे है! सालमे दो-एक व्यक्ति इन साड़ोंके कारण काशी-लाभ करते है। लगे हाथ एक उदारण सुन लीजिये। अब्राहिम लिंकनके बाद

जनरल ग्राट अमेरिकाके राष्ट्रपति हुए थे। एकबार जब वे हिन्दुस्तानमे दौरेपर आये तब बनारस भी आये थे। उन्होने इस शहरको 'ए सिटी आफ लेन्स' अर्थात् गलियोका शहर कहा है। कहा जाता है कि उनकी पत्नीको शंकर भगवान्के वाहनने अपने सीगपर उठा लिया था।

कहा जाता है कि राजा रामचन्द्रके सुपुत्रो (लव और कुश) से बुरी तरह शिकश्त खाकर पवनसुत हनुमानजी अपनी बिरादरीके साथ बनारसमे आकर बस गये है। आज वे इन गलियोमे क्रीड़ा-स्थल बनाकर परम प्रसन्न है। ऐसी घटनाएँ प्रायः सुननेमे आती है कि गलीसे गुजरते समय अचानक ऊपर छतसे पत्थरका बड़ा रोड़ा सिरपर आ गिरा और बड़ी आसानीसे स्वर्गमे सीट रिजर्व हो गयी। असलमे यह पवनसुतके वंशजोंका महज खिलवाड़ है। 'खिलवाड़'मे अगर कोई सीधे स्वर्ग पहुँच जाता है तो वह अपराध कैसे हो सकता है? पवनसुतके वंशजोका तर्क कानून शास्त्रियो-को घपलेमें डाल देता है। इस आसमानी खतरेसे बचनेके दो ही उपाय है—एक तो सिरपर फौजियोवाली लोहेकी टोपी या फिर आपका अपना भाग्य! क्योकि इस तरहकी फौजदारीकी घटना किसी थानेमे दर्ज नहीं होती और न इसके मुकदमे अदालतमे स्वीकार किये जाते हैं।

इन गलियोका नामकरण और उनकी दूरीको यदि आप नजर अन्दाज करे तो बनारसके पोस्टल विभागकी प्रशंसा करेगे। हर बनारसी अपनेको 'सरनाम्' (प्रसिद्ध) समझता है। मुहल्लेका एक व्यक्ति समूचे मुहल्लेकी जानकारी रखता है। उसका विश्वास है कि मुहल्लेके डाकियासे मुख्यमंत्री तक उसके नामसे परिचित है। काशीमे दसपुतरिया गली महज ८–१० मकानोका एक मुहल्ला है, पर वहाँके रहनेवालोको दसपुतरिया गलीके नामपर पत्र मिल जाते है। इसप्रकार छोटी-छोटी गलियाँ यहाँ काफी प्रसिद्ध है। नगरपालिका भले ही नेताओंके नामपर गलियोका नामकरण करे, पर बनारसवाले अपनी पुरानी परम्पराको नहीं बदल सकते।

इन गलियोंमें गर्मीके दिनमें शिमलेका मजा, जाडेमें पुरीका मजा और वरसातमें पहाडी स्थानोंका मजा, अनायास मिलता रहता है। यही वजह है कि वनारसी लोग पहाडी स्थानोंमें कभी नहीं जाते। रहा गन्दगीका प्रश्न—सो कहाँ नहीं है। जिस गलीमें इमलीके वीज विखरे हो, समझ लें इस गलीमें मद्रासी रहते हैं। जिस गलीमे मछली महँकती हो, वह वंगालियोका मुहल्ला है। जिस गलीमे हड्डी लुढ़की हो वह मुसलमान दोस्तोका मुहल्ला है। इसप्रकार हर गलीमें प्रत्येक वर्गका 'साइनवोर्ड' लटक्ता रहता है। अध्ययन करनेवालोंको इन साइनवोर्डोंसे वड़ी 'हेल्प' मिलती है; मदनपुरा, पाड़े हवेली, सोनारपुरा आदि मुहल्लोंमें साडियाँ वनती हैं और रानीकुआँ, कुंजगली आदि मुहल्लोंमे विकती है। गोविन्दपुरा, राजादरवाजा रानीकुआँ, कोदईकी चौकीमे सोने-चाँदीका व्यवसाय होता है। कचौडी गलीकी कचौडी, ठठेरी वाजारके पीतलके वर्तन, विश्वनाथ गलीकी चूडियाँ, लकडीके खिलौने भारतमे प्रसिद्ध है। मिश्रपोखरा स्थित जर्देके कारखाने, लोहटिया और नखासमे लोहे लकडीका व्यवसाय होता है। अधिक दूर क्यो, काशीमे मंगलामुखियोका व्यवसाय भी गलियोंमें ही होता है। दालमण्डी—छत्तातले, मडुवाडीहमे आशिक लोग नित्य शामको जुटा करते है।

मतलव यह कि वनारसकी प्रसिद्धि जिन वस्तुओंके कारण है, उन वस्तुओंका व्यवसाय गलियोमे ही होता है।

: बनारसके मन्दिर :

धार्मिक ग्रन्थोंकी गवाहीपर यह कन्फर्म हो चुका है कि हिन्दुओंके पूरे तैतीस करोड़ देवता है। लेकिन आजतक इन तैतीस करोड़ देवताओंकी सम्पूर्ण परिचय-तालिका किसी भी 'धार्मिक गजेटियर' में प्रकाशित नही हुई है। भारतके किसी भी पण्डितने यह दावा नही किया कि मै तैंतीस करोड़ देवताओंके नाम बता सकता हूँ। धर्मके नामपर अपनी जेब हल्की करनेवाले महानुभावोंको चाहिए कि वे इन देवताओंकी एक सूची जरूर तैयार कराये। यह तथ्य प्रकट होना आवश्यक है कि तैतीस कोटि फीगर्स-मे कितने अपनी उपासना करा रहे है और कितनेके सामने 'टू लेट' बोर्ड लटक रहा है !

सबसे अधिक आश्चर्यकी बात यह है कि इतने देवताओंकी उत्पत्ति कैसे हुई जबकि प्राचीनकालमें भारतकी आबादी बहुत कम रही ? धार्मिक ग्रंथोमे जब तैतीम करोड़ देवताओंकी चर्चा है तब बात झूठ नहीं हो सकती। भारत मूलतः धर्म-प्राण देश है। यहॉकी अधिकाश आबादी आस्तिकोंकी है। नास्तिक तो मूर्ख होते है, अतः उनकी चर्चा ही व्यर्थ है। इसलिए तैतीस करोड़ देवताओंके अस्तित्वके बारेमे अविश्वास करनेकी गुंजाइश नहीं।

मेरे एक मित्र है, मैने उनसे अपनी शंका प्रकट की तो बोले—जिस प्रकार रेनाल्ड साहबने ४८ भागमे 'लण्डन रहस्य' लिखा है—उसे देखकर हमारे बनारसी रईस बाबू देवकीनन्दन खत्रीने 'चन्द्रकान्ता' और 'भूतनाथ' मिलाकर ५२ भाग लिखे है ठीक उसी प्रकार जब आर्य अर्थात् हिन्दू यहॉ आये तब अनार्योंके ३२ करोड़ देवताओंकी संख्या देखकर सम्भव है, उन्होंने अपने देवताओंकी सख्या ३३ करोड़ बना ली हो। यद्यपि बात कुछ जमी नहीं, तथापि मेरी शंका बोलती बन्द हो गयी।

इन देवताओंकी उत्पत्तिका विषय जितना रहस्यमय है, उतना ही इनकी आवासभूमि भी। यदि कोई फर्स्ट डिविजनर मास्टर आफ आर्टस् इस विषयपर थीसिस लिखे तो अनायास उसे डाक्टरकी उपाधि मिल सकती है। जाति विशेषके विषयपर अन्वेषण करनेवाले विद्यार्थियोंको जब स्कालरशिप मिलती है तब इस विषयपर आसानीसे मिल सकती है। अब तक कतिपय देवताओंके निवासस्थलका पता चला है, जैसे रामचन्द्रजीका अयोध्या, कृष्णका मथुरा, कामक्षाका कामरूप, जगन्नाथका पुरी, लक्ष्मीका बम्बई, कालीका कलकत्ता, सीताजीका जनकपुरी और शिवका काशी। मुझे आशा है इस सडकपर समयानुसार कोई महाशय अवश्य थीसिसका खच्चर हाँकेंगे।

मन्दिरोंकी नगरी

काशीको साक्षात् शिवपुरी कहा गया है। यहाँका प्रत्येक कंकड शकर कहा जाता है। कुछ लोग तो इसे मन्दिरोकी नगरी भी कहते है। संख्या-अन्वेषकोंके मतानुसार यहाँ मकानोंसे अधिक मन्दिरोकी संख्या है। शायद यह बात ठीक भी है क्योकि सड़क चौडी करनेके नामपर इम्पूवमेण्ट ट्रस्ट मकान गिरा सकता है, दूकान तुडवा सकता है और बगीचेका घेरा सड़कमे ले सकता है, लेकिन मन्दिर-मसजिदका अंश छूनेकी हिम्मत उसमें नहीं है। कौन मन्दिरोंके देवता और भक्तोसे मुफ्त झगड़ा मोल लेने जाय !

बनारसमे कितने मन्दिर है अथवा यहाँकी आबादीमें कितने आस्तिक है, इस बातका अन्दाजा किसी परिवारमे कुछ दिन बिना रहे नहीं लग सकता। गृहस्वामी रोजी-रोजगारमे बरकत हो इस उद्देश्यसे नित्य सवेरे गंगा स्नानकर अन्नपूर्णाके मन्दिरमे पण्डितजीसे जाप करवाते है, दूकानमे गणेशजीको माला पहनाते है, धूप सुंघाते है और अन्तमें 'शुभ-लाभ' शब्दके आगे श्रद्धासे सर झुकाते है। गृहस्वामिनी नाती-पोतेका मुँह देखने-

के लिए और पति-पुत्रके कुशल-मंगलके लिए दुर्गा भवानीका दर्शन करती है। साहबजादेकी नसोमें जवानी अंगडाइयाँ लेती है, इसलिए वे महावीर-जीके उपासक है, संकट मोचन नियमित दर्शन करते है और सवा पाव दलबेसनका जलपान करते है। पुत्रवधू माँ बनने तथा पतिको वशमें रखनेके लिए तुलसीके पौधेको सींचती है, पीपलके पेड़मे पानी देकर फेरी लगाती है।

प्राचीनकालमें भले ही हमारे घरोंमें एक ही कुल देवता रहे हो, लेकिन आज एकसे अधिक देवताका पूजन प्रत्येक परिवारमे होता है। पता नहीं, कब कौन देवता संतुष्ट होकर छप्पर फाडकर धन दे दे या मनोकामना पूरी कर दे! कुछ लोग ऐसे भी है जो एक अर्सेतक एक देवताके उपासक बने रहनेके बाद जब कुछ नहीं पाते तब मित्रोकी रायके अनुसार अपने पुराने देवताको रिटायर्डकर किसी दूसरे देवताके उपासक बन जाते है। आज जिन परिवारोमे एकसे अधिक देवताओंका पूजन होता है, वहाँ देवताओंका बड़ा रंग रहता है। प्रत्येक देवताका सिंहासन, पंचपात्र, शंख, धूपदान और पहनावा अलग-अलग होता है। यहाँतक कि रुचिके अनु-सार उन्हें नैवेद्य भी चढ़ाये जाते है।

मन्दिरोंकी अधिकता क्यों ?

यह तो हुई गृह-देवताओंकी कहानी। इसके अलावा सार्वजनिक मन्दिरोकी अलग कहानी है। जिस प्रकार बनारसके हर चौराहेपर खच्चियों डाक्टर, दर्जनो पानवाले और सैकडो खोमचेवाले मिलते हैं, ठीक उसी प्रकार मन्दिरोंकी भरमार है। काशीमे प्राण त्यागना स्वर्गमे सीट रिजर्व करानेका सुगम मार्ग माना जाता है। कहा जाता है, ऐसे पुण्यात्माओंके वंशज अपने बाप-दादाकी स्मृतिमे—जो कि उनकी अन्तिम इच्छा रहती है, पूरी करनेके लिए—मन्दिर बनवा देते है। भले ही आगे चलकर उन

मन्दिरोंमें बनारस शहरके स्थायी कोतवाल भैरवनाथ अपना अस्तबल बना लें। आज पंचकोशीमे ऐसे अनेक शिव मन्दिर है जहाँके शिव अक्षत-फूलको कौन कहे पानीके लिए तरसते हैं। पंचक्रोशी करनेवाले यात्री मन्दिरतक न जाकर सड़कपरसे ही उनके मन्दिरके सामने पानी छिड़क-कर आगे बढ़ जाते हैं और रातको उन मन्दिरोमें भैरवनाथके खासवाहन (कुत्ता) सोते रहते है। चूँकि शंकर साक्षात् आशुतोष हैं, इसलिए केवल पानी पाकर सन्तुष्ट हो जाते है।

'राजतरंगिणीके' अध्ययनसे पता चलता है कि प्राचीन कालमें काश्मीरके प्रायः सभी नरेश अपने नाम पर, अपनी प्रियतमके नामपर और अपने पूर्वजोके नामपर मन्दिर बनवाया करते थे। इस प्रकार उनके नाम देवी-देवताकी कोटिमें आ जाते थे। शायद उन लोगोने गीताका अध्ययन किया था, इसीलिए 'नराणा च नराधिपम्' श्लोकको यथार्थवादका रूप दे देते रहे। यह परम्परा केवल काश्मीरमें ही नहीं, अपितु समस्त भारतमे रही। फिर काशी जैसे मोक्षधाममे लोग यह परम्परा लागूकर पुण्य लूटनेमें पीछे क्यो रहते ? जो लोग मन्दिर बनवानेमें असमर्थ होते है, वे मन्दिरोंकी दीवालों या फर्शपर संगमरमरका एक टुकड़ा चिपकवाकर पुण्यात्मा बन जाते है, जैसे किसी तीर्थयात्रीके वापस आनेपर पैर धुलाने-वाला बिना तीर्थ गये पुण्यका भागी बन जाता है। बनारसके अधिकाश मन्दिरोकी यही हालत है। एकने मन्दिर बनवाया; दूसरेने फर्श, तीसरेने घंटा टँगवाया, चौथेने चहारदीवारी बनवायी और पाँचवेंने मरम्मत या सफेदी करवा दी। इस प्रकार मन्दिरोंका निर्माण और जीर्णोद्धार होता रहता है। अधिक दूर क्यो-स्वयं काशी विश्वनाथ मन्दिरकी यही हालत है। जबसे वे ज्ञानवापीके कुएँमें गिर पड़े, वहाँसे फिर निकले नहीं। पुराना मन्दिर मसजिदके कारण अपवित्र हो चुका था, इसलिए वहाँसे हटकर नवीन मन्दिर रानी अहल्या बाईने बनवाया। घंटा टँगवाया नेपाल नरेशने, मन्दिरके ऊपर सोनेका पत्तर चढ़वाया महाराज रणजीत सिंहने और नौबत-

खाना बनवाया अजीमुल मुल्कअली इब्राहीम खाने। कहनेका मतलब बाबा विश्वनाथकी सारी सामग्री दानकी है। रातको आरतीका प्रबन्ध नाटकोट छत्रवालोंकी ओरसे होता है। यही हाल अन्नपूर्णा मन्दिरका है। वहाँका एक हिस्सा और मूर्तियाँ श्री पुरुषोत्तम दास खत्रीकी बनवायी हुई है।

कुछ लोग ऐसे भी है जो न तो मन्दिर बनवा सकते है और न जीर्णोद्धार करा पाते है; ऐसे लोग मन्दिरोंकी दीवालो पर अपना नाम-ग्राम लिखकर भक्ति प्रदर्शित करते हैं। मुमकिन हैं, उनका यह कार्य यमराजके पुण्यवाले खानेमे दर्ज हो जाता हो!

इतिहासकारोंका मत है कि अकबरके शासनकालमें अकेले राजा मान-सिंहने बनारसमे सवालाख मन्दिरोंका निर्माण करवाया था। उनमेसे अकबरके परपोते औरंगजेब और उसके सैनिकोंने कितनोको तोड़ डाला; इसका रेकार्ड किसी भी इतिहासमें प्राप्य नहीं है। काशीके पण्डित प्रत्येक मन्दिरको सतयुग-द्वापर और त्रेताके समयका है—बताते है। पुरातत्त्ववाले काशीके मन्दिरोंके बारेमें कहते है कि सभीका निर्माण काल ३०० वर्षके अन्तर्गत है। केवल कर्दमेश्वरका मन्दिर इसका अपवाद है। कर्दमेश्वरका मन्दिर दसवीं शताब्दिका है। लेकिन कुछ प्रगतिशील लोग इस प्रश्नपर शंका प्रकट करते है कि तुलसीदासके युगमे अर्थात् १६ वीं शताब्दिके समय जब भदैनी शहरका बाहरी अंचल माना जाता था तब कर्दमेश्वर जैसे स्थानमे यह मन्दिर कैसे बन गया? अभी तक यह प्रश्न ज्यों-का-त्यों खड़ा है–इसे अभी हल करके बैठाया नहीं जा सका। कहनेका मतलब पुरातत्त्व वालोंका कथन और प्रगतिशील व्यक्तियोंकी शंका अपनी-अपनी जगह ठीक है।

यह निर्विवाद सत्य है कि बनारसमे मन्दिरोंकी अधिकता इसलिए है कि भारतके सभी धर्मप्राण व्यक्ति जिन्हे कुछ काम नहीं था, यहाँ आकर मन्दिर बनवाते रहे अथवा अपनी यह सद्-इच्छा मरते समय अपने वंशजों

पर प्रकट कर देते रहे ताकि उनके वंशज काशीमें जाकर उनके नामपर मन्दिर जरूर बनवा दें। यदि पुरातत्त्ववालोंका यह विचार सही मान लिया जाय कि सभी मन्दिर ३०० वर्षके भीतर बने है तो यह मान लेना पड़ेगा कि इसके पहले के सभी मन्दिर या तो मसजिदोंके रूपमे परिणत हो गये या लुप्त हो गये, जैसे गंजी खोपडीसे बाल लुप्त हो जाता है। फिर इन ३०० वर्षोंमें जब कि भारत गुलाम रहा—पैसेकी कमी रही, चारो तरफ मार-काट मची हुई थी, इतने मन्दिर कैसे बन गये? इस विषयपर कई राये है जिनमे एक राय मुझे अधिक संगत प्रतीत होती है। वह है—बनारसकी गन्दगी।

बनारसमें गन्दगी

बनारसमे गन्दगीके दो कारण है—पहला नगरपालिकाकी असीम 'कार्यपटुता' और दूसरा बनारसियोंकी आदत। बनारसकी किसी भी गलीसे आप गुजरिये उधरके सभी त्रिमुहानी, कोना अथवा सन्नाटावाले स्थानोमें कर्मनाशा बहती है। सेण्टसे तर रूमाल भी नाकपर बिलबिलाने लगता है। कुछ प्रमुख स्थानोमें नगरपालिकाका कूड़ा गोदामघर है—जैसे बैंकवाले बडे-बड़े फर्मोंका रखते हैं। आपको जानकर आश्चर्य होगा कि जिस तरह बैंकवाले, उतना ही माल पार्टीको उठाने देते है जितने मालका भुगतान पार्टी करती है, ठीक उसी प्रकार नगरपालिका भी जब जितना जरूरत समझती है उतना ही कूड़ा इकट्ठा करती है और उठाती है। नगरपालिकाकी सरकारी गाडी (कूड़ा ढानेवाली भैंसा गाडी) जिस वक्त किसी संकरी गलीसे गुजरती है, ट्रैफिक रुक जाता है।

नगरपालिकाकी इस आदतको छुडानेके लिए नागरिकोंने दूसरा कदम अख्तियार किया। जिन क्षेत्रोंमे कूडेका अम्बार लगा रहता था, वहाँके नागरिक पहले उन कूडोंके ऊपर दरी बिछाकर नगरपालिकाके मेम्बरो और चेयरमैनको बुलाकर सभा करवाते रहे। इससे भी जब समस्या हल नही

हुई तो चन्दा इकट्ठाकर एक दिन वहाँ एक मन्दिर बनवा दिया। फिर उसमे किसी देवताको प्रतिष्ठित कर दिया। इसमें महाबीरजी, चौरामाई और शंकर प्रमुख है। इसके बाद कुछ लोग नियमित रूपसे वहाँ पूजापाठ हवन करने लगे। कथाएँ हुईं। असेंतक भीड़-भाड़ होती रही। इस प्रकार वह स्थान पवित्र हो गया। इतनी गनीमत है कि नगरपालिकाके अधिकाश अधिकारी आस्तिक है, खासकर कूड़ा—अधिकारी; इसलिए जो-जो स्थान इस तरह पवित्र होते गये, उन्हे पुनः अपवित्र करनेकी चेष्टा नहीं की गयी। इस प्रकार बनारसमें मन्दिरोकी संख्या बढ़ती गयी।

काशीके प्रमुख मंदिर

बनारसमे सिर्फ विश्वनाथ मन्दिर ही नहीं है, बल्कि समस्त भारतके देवी-देवता और तीर्थस्थान भी है। यदि आप चारो धाम नही कर सकते अथवा समस्त देवी-देवताके दर्शनसे वंचित है तो आज ही काशी चले आइये। बद्रीनाथ, केदारनाथ, रामेश्वर, जगन्नाथ जी, कामक्षा, काली, पशुपतिनाथ, कृष्ण कन्हैया, द्वारकाधीश, महालक्ष्मी और दुर्गा आदिके मन्दिरोंको देख लीजिए। गगोत्री, पुष्कर, वैद्यनाथ, भास्कर और मान-सरोवर आदि तीर्थस्थान देख लीजिए

तुलसीदासजीका बनवाया हुआ संकटमोचनका मन्दिर जहाँका वेसन का लड्डू परम प्रसिद्ध है, गोपाल मन्दिर जहाँका ठोर (एक प्रकारकी मिठाई) बिना दाँतका व्यक्ति खा जाता है और दुर्गाजीका मन्दिर जहाँ रामजीकी सेना रहती है—बनारसके प्रमुख मन्दिरोंमे है। काशी करवटका शिव मन्दिर तो इतना प्रसिद्ध है कि दोपहरके वक्त बिजलीकी रोशनीमे दर्शन देते है। यहाँका इतिहास आज भी बड़े-बूढोकी जबान पर है। बराहीदेवीके मन्दिरमे औरते नहीं जाने पातीं। कहा जाता है किसी समय वे एक लडकीको निगल गयी थी। चूँकि उनके मुँहमे उस लड़कीकी

चुनरी लटकी हुई थी, इसलिए यह पता चल गया कि वे निगल गयी है, वर्ना लडकीका गायब होना रहस्य बना रह जाता। इस घटनाके बादसे औरते ऊपरसे दर्शन करती हैं, केवल पुरुष भीगे हुए वस्त्र पहनकर नीचे जाते है। काशीमें आदि विश्वेश्वरका मन्दिर है जहाँ गोपाष्टमीके समय शहरकी वारागनाएँ मुफ्तमें आकर मनोविनोद करती है। पास ही सत्यनारायण मन्दिरमें श्रावणके झूलेमे भगवान्का ऐसा लाजवाब शृङ्गार होता है कि देखकर भगवान्के भाग्यपर ईर्ष्या होती है। लाट, भूत, आनन्द और बटुक आदि आठ भैरव, सोलह विनायक और नव दुर्गाके मन्दिर अपने-अपने मौसममे बनारसके नागरिकोंको बुलाते है।

काशीमे कलाकी दृष्टिसे दो मन्दिर दर्शनीय है। एक भारतमाताका मन्दिर, दूसरा नेपाली मन्दिर। यह तो अपनी-अपनी भावना है कि कुछ लोग मन्दिरोंका निर्माण बेकार समझते है, बुर्जुआवादी और पोगापन्थी समझते है। उनका ख्याल है कि मन्दिरोंमे अनाचार होते है। लेकिन आस्तिकजन (जिनमें मै स्वयं भी हूँ) ऐसा नही मानते। ये दोनो मन्दिर जीवनके लिए एक दर्शन है। एकसे देश भक्ति, दूसरेसे काम-जीवनकी शिक्षा मिलती है।

बनारसमे दो मन्दिर ऐसे भी है जिनके पास बैंक है। उनमे एक राम रमापति और दूसरा शिव बैंक है। इन बंकोमे राम नाम और शिव नाम जमा होते है—उधार दिये जाते है। सोचिये—विश्वमें ऐसे बैंक भला कही है।

इन मन्दिरोके अलावा कुछ ऐसे मन्दिर है जिनकी पूजा वे लोग करते है जो अच्छे मन्दिरोमे जा नहीं पाते अथवा बड़े देवताओं पर जिनका विश्वास नही होता। ऐसे लोग मुडीकट्टा बाबा, भैसासुर बाबा, ताड़देव, पीरबाबा और बेचूबीर आदि स्थानोमे जाकर शराब-गाँजा भी चढ़ाते है, पराठे और मोहन भोगका भी भोग लगाते है। इनके देवता सब कुछ

प्रेमसे दिया नैवेद्य स्वीकार कर लेते है। बरसातके मौसममें ये सभी देवता कजरी सुनते है, वेश्याका नाच देखते हैं और भजन भी सुनते है। देवता श्रद्धाके प्रेमी होते है वस्तुके नहीं। इन देवताओके उपासकोकी संख्या भी कम नहीं है।

अब तो पूज्य करपात्रीजी काशीमें व्यक्तिगत विश्वनाथ मन्दिरका निर्माण कर चुके और उधर विश्वविद्यालयमे नगरका सबसे ऊँचे शिखरवाला विश्वनाथ मन्दिर बन रहा है। इस प्रकार अब बनारसमें तीन-तीन विश्वनाथ मन्दिर बन गये। एक सभी हिन्दुओका, दूसरा सवर्ण हिन्दुओका और तीसरा विश्वविद्यालयके छात्रोका। अब किसीको विश्वनाथजीसे शिकायत नहीं रहेगी कि महाराज, मुझे आपका दर्शन नहीं मिलता।

: बनारसके मकान :

बनारसके मकानोपर कुछ लिखनेके पहले एक बात साफ कर देना चाहता हूँ। मेरा मकसद यह नहीं है कि बनारसमें कहाँ, किस मुहल्लेमें, कितने किरायेपर, कौन-सा मकान या फ्लेट खाली है अथवा बिकाऊ है, इन सब बातोकी रिपोर्ट पेश करूँ। काफी जोर-शोरके साथ अगर तलाश की जाय तो भगवान् मिल जायँगे, पर नौकरी और मकान नहीं। आजकल इन बातोका ठेका अखबारोंके विज्ञापन मैनेजरोने और हथुआ कोठीके रेण्ट कण्ट्रोलर साहबने ले रखा है। आपके दिमागमे यह ख्याल पैदा हो गया हो कि आपका भी बनारसमें 'इक बँगला बने न्यारा' और इस मामलेमें से आपकी मदद करूँगा (मसलन मकान बनवानेके नामपर सरकारसे किस प्रकार कर्ज लिया जा सकता है, यह सब तिकडम बताऊँगा) तो आपको गहरा धोखा होगा। मैं तो सिर्फ बनारसके मकानोका भूगोल और इतिहास बताऊँगा।

अब आप शायद चौंके कि मकानोंका भूगोल-इतिहास कैसा ? मकान माने मकान। चाहे वह बम्बईमें हो या बनारसमे। लेकिन दरअसल बात यह नहीं है। मकान माने महल भी हो सकता है और झोपड़ी भी हो सकती है। बम्बईमें एक मकान अपने लिए जितनी जमीन घेरता है, बनारसमे उतनी जमीनमे पचास मकान बन सकते है। यह बात अलग है कि बम्बईके एक मकानकी आबादी बनारसके पचास मकानके बराबर है।

दूसरी जगह आप मकान देखकर मकानमालिकके बारेमें अन्दाजा लगा सकते हैं। मसलन वह बडा आदमी है, सरकारी अफसर है, दूकानदार है, जमींदार है अथवा साधारण व्यवसायी है। लेकिन बनारसके

मकानोंकी बनावटके आधारपर मकान मालिकके बारेमें कोई राय कायम करना जरा मुश्किल काम है।

मान लीजिए आपने एक मकान देखा, जिसमे मोटर रखनेका गैरज भी है। ख्वामख्वाह यह ख्याल पैदा हो ही जायगा कि मकान मालिक बड़े शानसे रहता है। रईस आदमी है। लेकिन जब आपकी उससे मुलाकात हुई तो नजर आया, गलियोंमे 'रामदाना क लेड्डुवा, पइसामें चार' की चलती-फिरती दूकान खोले है। राह चलते किसीकी शक्ल देख कर आपने नाक सिकोड़ ली, पर वही आदमी शहरका सबसे सज्जन और कई मकानोंका मालिक निकला। इसके विरुद्ध टैक्सीपर चलनेवाले, गैव-र्डीनका सूट पहने सज्जन खपरैलके मकानमे किरायेपर रहते मिलेंगे।

बनारसमें अन्नपूर्णा मन्दिरकी बगलमे राममन्दिरके निर्माता श्री पुरुषोत्तमदास खत्री जब बाहर निकलते थे तब उनके एक पैरमे बूट और दूसरेमे चप्पल रहता था।

बाहरसे भव्य दीखनेवाला महल भीतर खण्डहर हो सकता है और बाहरसे कण्डम दीखनेवाला मकान भीतर महल हो सकता है। इसीलिए बनारसके मकानोंका भूगोल-इतिहास जानना जरूरी है।

भूगोल

अगर आपने आगरेका स्टेशन बाजार, लाहौरका अनारकली, बम्बईका मलाड, कानपुरका कलक्टरगंज, लखनऊका चौक, इलाहाबादका दारागंज, कलकत्तेका नीमतल्ला घाट और पुरानी दिल्ली देखा है तो समझ लीजिए उनकी खिचड़ी बनारसमे है। हर माडलके, हर रंगके और ज्योमेट्रीके हर अंशके कोणके मकान यहाँ है।

बनारस धार्मिक दृष्टिसे और ऐतिहासिक दृष्टिसे दो भागोंमे बॅटा हुआ है। धार्मिक दृष्टिसे केदार खण्ड, विश्वनाथ खण्ड और ऐतिहासिक दृष्टिसे भीतरी-महाल बाहरी अलंग। प्राचीनकालमे लोग गंगा किनारे बसना

अधिक पसन्द करते थे ताकि टपसे गंगामें गोता लगाया और खट्से घरके भीतर। सुरक्षाकी सुरक्षा और पुण्य मुनाफेमे। नतीजा यह हुआ कि गंगा किनारे आबादी घनी हो गयी। आज तो हालत यह है कि भीतरी महाल शहरका अंग न होकर पूरा तिलस्म-सा बन गया है। बहुत मुमकिन है, 'चन्द्रकान्ता' उपन्यासके रचयिता बाबू देवकीनन्दन खत्रीको भीतरी महालके तिलस्मोसे ही प्रेरणा मिली हो।

काश! उन दिनों इम्प्रूवमेण्ट ट्रस्ट होता, तो हमारे बाप-दादे मकान बनवानेके नाम पर हमारे लिए तिलस्म न बनाते। चौड़ी सडकोंको तंग गलियोका रूप न देते। यदि इम्प्रूवमेण्ट ट्रस्ट जैसी संस्था उन दिनो बनारसमें होती तो संभव था बनारस लन्दन या न्यूयार्क जैसा न सही, मास्को अथवा मेलबोर्न जरूर बन जाता।

बुजुर्गोंका कहना है कि काशीकी तंग गलियाँ और ऊँचे मकान मैत्री भावनाके प्रतीक है। भूत-प्रेतकी नगरीमे लोग पास-पास बसना अधिक पसन्द करते थे ताकि वक्त जरूरतपर लोग एक दूसरेकी मदद कर सके। मसलन आज किसीके घर आटा नही है तो पड़ोससे हाथ बढ़ाकर माँग लिया, रुपया उधार माँग लिया, नया पकवान बना है तो कटोरेमे रखकर हाथ बढ़ाकर पड़ोसीको दे दिया, कोई सामान मंगनीमे माँगना हुआ अथवा सूने घरका अकेलापन दूर करनेके लिए अपने-अपने घरमे बैठे-बैठे गप्प लड़ानेकी सुविधाकी दृष्टिसे भीतरी महालके मकान बनवाये गये है। इससे लाभ यह होता है कि चार-पाँच मंजिल नीचे न उतरकर सब काम हाथ बढ़ाकर सम्पन्न कर लिया जाता है। कहीं-कही पड़ोसियोंका आपसमे इतना प्रेम बढ़ गया कि गलीके ऊपर पुल बनाकर आने-जानेका मार्ग भी बना लिया गया है। यही वजह है कि भीतरी महालके मकानोमें चोरीकी घटनाएँ नहीं होतीं! इस इलाकेमे रहना गर्वकी बात मानी जाती है। बनारसके अधिकाश रईस-सेठ और महाजन इधर ही रहते है। बाकी कुली-कबाड़ी और उचक्कोंके लिए बहरी अलंग है। लेकिन जबसे

बनारसकी सीमा वरुणा-असीकी सीमाको तोड़कर आगे बढ़ गयी है तबसे भीतरी महालकी स्थिति चिर विधवा-सी हो गयी है। भले ही गर्मीमे शिमलेका मजा मिले, पर आधुनिक युगके लोग उधर रहना पसन्द नही करते।

इसका मुख्य कारण है—यातायातके साधनोकी कमी। आधी रातको आपके यहाँ बाहरसे कोई मेहमान आये अथवा सपत्नीक १२ बजे रात गाड़ीसे सफरके लिए जाना चाहे तो बक्सा बीबीके सिरपर और बिस्तर स्वयं पीठपर रखकर सड़क तक आइये, तब कहीं रिक्सा मिलेगा। भीतरी महालमे रातको कौन कहे, दिनमे भी कुली नही मिलते। गलियाँ इतनी तंग हैं कि कोई भी गाड़ी भीतर नहीं जाती। दुर्भाग्यवश आग लगने अथवा मकान गिरनेकी दुर्घटना होनेपर तत्काल सहायता नहीं मिलती। हाँ, यह बात अलग है कि मरीज दिखामेके लिए डाक्टरोंको ले जानेमे सवारीका खर्च नहीं देना पड़ता।

जिस प्रकार एक ही शक्लके दो आदमी नही मिलते, ठीक उसी प्रकार बनारसके दो मकान एक ढंगके नही है। कोई छः मंजिला है तो उसके बगलमे एक मंजिला मकान भी है। किसी मकानमे काफी बरामदे है तो किसीमे एक भी नही। भीतरी महालके मकानोका निचला हिस्सा सीड़न, अन्धकार और गन्दगीसे भरा रहता है। बहरी अलंगके मकानोकी हालत कुछ अच्छी है।

पुराने जमानेमे बाप-दादोके पास धुँवाधार पैसा रहा, औलादके लिए एक महल बनवा गये। बेचारे औलादकी हालत यह है कि राशनकी दूकानमें गेहूँ तौल रहा है। उसे इतनी कम तनख्वाह मिलती है कि मरम्मत कराना तो दूर रहा, दीपावलीपर पूरे मकानकी सफेदीतक नहीं करा पाता।

बनारसमे छोटे-बड़े सभी किस्मके मकानदारोंकी इज्जत एक-सी है। कोई बड़ा मकानवाला छोटे मकानवालेकी ओर उपेक्षाकी दृष्टिसे नहीं देख सकता। यहाँतक कि बड़े मकानमे रहनेवाले अपने मकानसे पड़ोसके छोटे

यद्यपि काशीमें मुहल्ले और मकान काफी है, पर हवेली साढ़े तीन ही है। महल कई है। हवेलियोंमे देवकीनन्दनकी हवेली, काठकी हवेली, काश्मीरीमलकी हवेली और विश्वम्भरदासकी हवेली काशीमें प्रसिद्ध है। इनमे आधी हवेली कौन है, इसका निर्णय आजतक नही हुआ। पाड़े हवेलीको हवेली क्यों नहीं माना जाता, यह भी बताना मुश्किल है, जब कि इस नामसे भी एक मुहल्ला बसा हुआ है।

यदि आपको भ्रमणका शौक है और पैसे या समयके अभावसे समूचा हिन्दुस्तान देखनेमें असमर्थ हैं तो मेरा कहना मानिये, सीधे बनारस चले आइए। यहाँ हिन्दुस्तानके सारे प्रान्त मुहल्लेके रूपमें आबाद हैं। हिन्दुओंके तैतीस करोड़ देवता काशीवास करते मिलेंगे, गंगा उत्तरवाहिनी है, तिलस्मी मुहल्ला है, ऐतिहासिक मकान है और जो कुछ यहाँ है, वह दुनियाके सात पर्देमे कहीं नहीं है। बनारस-दर्शनसे भारत-दर्शन हो जायगा। यहाँ एकसे एक दिग्गज विद्वान् और प्रकाण्ड पण्डित है। प्रत्येक प्रान्तका अपना-अपना एक मुहल्ला भी है।

बंगालियोका बंगालीटोला, मद्रासियों तथा दक्षिण भारतीयोंका हनुमान घाट, केदारघाट, पंजाबियोंका लाहोरीटोला, गुजरातियोका सूतटोला, मारवाड़ियोका नन्दनसाहू गली, कन्नड़ियोका अगस्तकुण्डा, नैपालियोका बिन्दुमाधव, ठाकुरोंका भोजूबीर, राजपूतानेके ब्राह्मणोका रानीभवानीगली, सिन्धियोका लाला लाजपतराय नगर, महाराष्ट्रियोका दुर्गाघाट, बालाघाट, मुसलमानोंका मदनपुर, अलईपुर, लल्लापुर और काबुलियोका नयी सड़क-बेनिया मुहल्ला है। इसके अलावा चीनी, जापानी, सिंहली, फ्रासिसी, भूटानी, अँग्रेज और अमेरिकन भी यहाँ रहते है। सारनाथमे बौद्धोंकी बस्ती है तो रेवड़ी तालाब पर हरिजनो की। व्यवसायके नामपर भी अनेक मुहल्ले आबाद हैं।

: बनारसकी चौपाटी :

काशीको दुनियासे न्यारी कहा जाता है और यह सारा 'न्यारापन', बनारसी चौपाटी-दशाश्वमेध घाटपर खिंच आया है, यह निस्सन्देह कहा जा सकता है।

जो बम्बईकी चौपाटीकी चाट खा आये हैं, उन्हें दशाश्वमेधघाटकी चौपाटी कहते जरा झिझक होती है। ऐसे लोगोको असली बनारसी 'गदाई' के विशेषणसे युक्त करनेमे कभी संकोच नही करेगा। किसी बनारसीको, अगर बम्बईमे छोड़ दिया जाय तो वह अपनेको 'पागल' समझनेको विवश हो जायगा कुछ ही दिनोंमें। बम्बईमे पाश्चात्य-चमक भले ही हो, पर भारतीयताकी झलक तो अपने बनारसमे ही मिलती है। खैर।

यह निश्चिन्तमनसे स्वीकारा जा सकता है कि बम्बईकी चौपाटी-दशाश्वमेध घाटमें कोई मुकाबला नहीं। एकमे बाजारू सौन्दर्य है तो दूसरेमे शाश्वत।

मुलाहज़ा फरमाइये—

सुबह होते ही, घाटपर मालिशका बाजार गर्म हो जाता है। बनारसीके लिए स्नानके पूर्व मालिशका वही महत्त्व है, जो आधुनिकोके लिए स्नो-क्रीम-पाउडरका। एक पैसेकी दक्षिणामे, कपड़ोकी चौकीदारी, स्नानोपरान्त आइने-कंघीकी व्यवस्थासे लेकर तिलक लगाने तककी सेवा आप यहाँ उपस्थित घाटियेसे ले सकते है। ब्राह्मणका आशीर्वाद फोकटमे मिल जायगा।

जरा सामने निगाह उठाइये तो गंगाकी छातीपर धीरे-धीरे उस पारकी ओर सरकती नौकाएँ आपका ध्यान तुरत आकर्षित कर लेगी। बनारसके

'गुरु' और रईस, शहरमें मल-त्यागना अपराध समझते हैं, सो उसपार निछद्दममें निपटानको जाते हुए बनारसीकी दिव्य छटासे आपकी आत्मा तृप्त हो जायगी। ये निपटान-नौकाएँ, अधिकतर पर्सनल होती है और इनका दर्शन शामको भी किया जा सकता है।

स्नानार्थियोंमें कमसे कम ७० परसेंट महिलाएँ होती है, इसलिए कुछ बीमार किस्मके 'आँख-सेकते' भी दिखाई पडेंगे। बनारसकी महिलाएँ जरा मर्दानी किस्मकी होती हैं, सो ऐसे बीमारोंकी कतई परवा नही करतीं।

अस्सी और वरुणा-संगमके मध्यमें होनेके कारण यहाँसे सम्पूर्ण बनारसकी परिक्रमा आप कर सकते है, इसलिए कि काशीका 'रस' यहाँके घाटोंमें ही सन्निहित है।

अब घाटसे ऊपर आइये और देखिये कि बनारस कितना कंगाल है— सडक पर अपनी गृहस्थी जमाये भिखमंगोंको देखकर स्वाभाविक है कि बनारसके प्रति आपकी आइडिया खराब हो जाय, यह अनभिज्ञता और भ्रमका परिणाम है। काशीके भिखमगोंकी माली हालत आफिसमें कलम रगड़नेवाले सफेद पोश बाबुओंसे उन्नीस नहीं होती। मरनेके बाद उनके लावारिस गूदड़के अन्दरसे सरकारको अच्छी-खासी आमदनी हो जाती है। भिखमंगोंके बनवाये हुए अनेक भवन-धर्मशालाएँ बनारसमे स्थित है। एकबार चितरञ्जन-पार्कके पास एक बूढी भिखमंगिन जब मरी तब उसके गूदड़से सात सौ अट्ठासी रुपये, साढे तेरह आनेकी मोटी रकम प्राप्त हुई थी। मेरे कहनेका यह मतलब नहीं कि आप उन्हे 'छिपा-रईस' समझ कर उनका जायज हक हडपकर लें। भीख माँगना उनका पेशा है और पेशेका सम्मान करना आपका धर्म।

शामको इस बनारसी चौपाटीका वास्तविक सौन्दर्य दीख पडता है। कराचीकी फैशनपरस्ती, लाहौरकी शोखी, बंगालकी कला प्रियता, मदरासकी शालीनता, गुजरात-महाराष्ट्र सब उमड़ पड़ता है। यद्यपि दशाश्वमेधका

क्षेत्र बहुत ही सीमित है तथापि गागरमें सागरका समाजाना आप खूब अनुभव कर लेंगे।

विश्वनाथ गलीवाली नुक्कड़से सिलसिलेवार स्थित तीन रेस्तरा आपको सर्वाधिक आकर्षित करेंगे। उनके अनुचर मोचीसे लेकर श्रीमान् तकको बिना किसी भेदभावके, भाई साहब, चचा, दादा और बहनजी आदि पुनीत सम्बोधनोंसे निहाल कर देंगे; भलेही आपकी जेबमें एक कप चाय तककी कीमत न हो।

उपर्युक्त तीनो जलपान-घरोका ऐतिहासिक महत्त्व है। बनारसके इकन्नियाँ ब्रांडसे लेकर रुपये ब्राण्डतकके साहित्यकार, शामको इन्हे अपने आगमनसे पवित्र करना अपना कर्तव्य समझते है। थोड़ा प्रयत्न करे तो घाटके किसी अन्धेरे कोनेमें, साहित्यकारोकी मण्डली किसी गम्भीर साहित्यिक-समस्यामें उलझी हुई मिल जायगी।

यो काशीका ऐसा कोई साहित्यकार आपको नहीं मिलेगा जो दशाश्वमेधमे न जमता हो। अनेक साहित्यिक-वादोका प्रसार और उनके आपरेशनका थियेटर भी दशाश्वमेध ही है। अधिकतर साहित्यिक गोष्ठियाँ भी यहीं आयोजित होती है।

घाटपर शामको, धर्मोंकी जो धारा लहरती है, वह अन्यत्र दुर्लभ ही है। कथावाचक रामायण, महाभारत, चैतन्य चरितावली, भागवत आदिकी पुनीत कथासे वातावरणको गमका देते है।

इस स्थानकी प्रशंसा भारतीयोने की ही है, दूसरे देशवालोंने भी गुणगान किये है। प्रसिद्ध पर्यटक श्री जे० बी० एस० हाल्डेनकी पत्नीने कहा है कि मुझे यह जगह न्यूयार्कसे अच्छी लगती है। एक रूसी पर्यटकने इसे पेरिससे सुन्दर नगरी कहा है। विश्व स्वास्थ्य संघके एक अधिकारीने इसे सारे जहाँसे अच्छा स्थल माना है। मेरे एक मित्र, जो लन्दन गये हुए है, उन्होने जब स्वेज नहरका दृश्य देखा तब उन्हें बनारसके घाटोंके दृश्य याद आ गये।

प्राचीनकालमें दशाश्वमेधका नाम 'रूपसरोवर' था। इसके बगलमें घोड़ा घाट है। पहले इसका नाम गऊघाट था। काशीकी गायें यहाँ पानी पीने आती थीं। गोदावरी-गंगाका संगम स्थल आज घोड़ाघाट बन गया है। त्रेतायुगमें दिवोदासने यहाँ दस अश्वमेध यज्ञ करवाये थे, तभीसे इस स्थानका नाम दशाश्वमेध घाट हो गया है। आज भी ऊपर दशाश्वमेधेश्वरकी मूर्त्ति है।

शायद ही ऐसी कोई राजनीतिक पार्टी होगी जिसकी सभा इस घाटपर न हुई हो। खासकर सन् ४२ के आन्दोलनके पूर्वके सभी उपद्रव इसी घाटसे प्रारम्भ किये जाते थे। शहरका प्रत्येक जुलूस इसी स्थानसे सजधजकर चलता है। शहरकी सबसे बड़ी सट्टी (तरकारी बाजार) यहीं है और महामना मालवीयने हरिजन-शुद्धिका आन्दोलन इसी घाटसे प्रारंभ किया था।

अब उत्तर प्रदेशके मुख्य मंत्रीकी कृपासे इस घाटका पुनर्निर्माण शुरू हुआ है। निर्माण कार्य समाप्त हो जानेपर यह निश्चित है कि यह स्थान काशीका सर्वाधिक आकर्षक केन्द्रस्थल बन जायगा।

बम्बइया चौपाटीको मात देनेके लिए उत्तर प्रदेशीय-सरकारने भी एक मार्वेलेस-प्लान कार्यान्वित करनेका निश्चय कर लिया है। राजघाट-सारनाथ सड़कके पुलके फाटक बन्द करके वरुणा नदीसे विशाल झील निर्मित होगी। शान्त-वातावरणमें इस झीलमे जल-विहार कितना मनोरम होगा, अनुमान ही मनमे स्फुरण भर देता है।

: बनारसकी सीढ़ियाँ :

रॉड, सॉड, सीढी, संन्यासी ।
इनसे बचे तो सेवे काशी ॥

पता नहीं, कब किस दिलजलेने इस कहावतको जन्म दिया कि काशीकी यह कहावत अपवादके रूपमे प्रचलित हो गयी। इस कहावतने काशीकी सारी महिमापर पानी फेर दिया है। मुमकिन है कि उस दिलजलेको इन चारोंसे कभी वास्ता पड़ा हो और काफी कटु अनुभव हुआ हो। खैर, चाहे जो हो, पर यह सत्य है कि काशी आनेवालोंका इन चारोंसे परिचय हो ही जाता है। फिर भी आश्चर्यका विषय यह है कि काशीमें आनेवालोंकी संख्या बढ़ती जा रही है और जो एकबार यहाँ आ बसता है, मरनेके पहले टलनेका नाम नहीं लेता, जबकि पैदा होनेवालोसे कहीं अधिक श्मशानमे मुर्दे जलाये जाते है। यह भी एक रहस्य है।

इन चारोंमे सीढ़ीके अलावा बाकी सभी सजीव प्राणी है। बेचारी सीढीको इस कहावतमे क्यो घसीटा गया है, समझमें नही आता। यह सत्य है कि बनारसकी सीढियॉ (चाहे वे मन्दिर, मस्जिद, गिर्जाघर अथवा घर या घाट किसीकी क्यो न हो) कम खतरनाक नहीं है, लेकिन यहॉकी सीढ़ियोंमें दर्शन और अध्यात्मकी भावना छिपी हुई है। ये आपको जीनेका सलीका और जिन्दगीसे मुहब्बत करनेका पैगाम सुनाती हैं। अब सवाल है कि वह कैसे? आँख मूँदकर काम करनेका क्या नतीजा होता है, अगर आपने कभी ऐसी गलती की है, तो आप यह स्वयं समझ सकते है। सीढ़ियॉ आपको यह बताती रहती है कि आप नीचेकी जमीन देखकर चलिए, दार्शनिकोंकी तरह आसमान मत देखिये, वर्ना एक अर्सेतक

आसमान में दिखा दूँगी अथवा कजा आयी है जानकर सीधे शिवलोक भिजवा दूँगी।

काशी की सीढ़ियाँ चाहे कहीकी क्यो न हो—न तो एक नापकी है और न उनकी बनावटमे कोई समानता है, न उनके पत्थर एक ढंगके है, न उनकी ऊँचाई-नीचाई एक सी है, अर्थात् हर सीढ़ी हर ढगकी है। जैसे हर इन्सानकी शक्ल जुदा-जुदा है, ठीक उसी प्रकार यहाँकी सीढ़ियाँ जुदा-जुदा ढंगसे बनायी गयी है। काशीकी सीढियोकी यही सबसे बडी खूबी है। अब आप मान लीजिए सीढ़ीके ऊपर है, नीचेतक गौरसे सारी सीढ़ियाँ आपने देख लीं और एक नापसे कदम फेकते हुए चल पड़े, पर तीसरीपर जहाँ अनुमानसे आपका पैर पड़ना चाहिए नहीं पडा, बल्कि चौथीपर पड़ गया। आगे आप जरा सावधानीके साथ चलने लगे तो आठवीं सीढी अन्दाजसे कहीं अधिक नीची है, ऐसा अनुभव हुआ। अगर उस झटकेसे अपनेको बचा सके तो गनीमत है, वर्ना कुछ दिनोंके लिए अस्पतालमें दाखिल होना पड़ेगा। अब आप और भी सावधानीसे आगे बढे तो बीसवीं सीढ़ीपर आपका पैर न गिरकर सतहपर ही पड़ जाता है और आपका अन्दाजा चूक जाता है। ग़ौरसे देखनेपर आपने देखा यह सीढ़ी नही, चौडा फ़र्श है।

खतरनाक सीढ़ियाँ क्यों

अब सवाल यह है कि आखिर बनारसवालोने अपने मकानमें, मन्दिर में, या अन्य जगह ऐसी खतरनाक सीढ़ियाँ क्यों बनवायीं? इसमे क्या तुक है? तो इसके लिए आपको जरा काशीका इतिहास उलटना पड़ेगा। बनारस जो पहले सारनाथके पास था, खिसकते-खिसकते आज यहाँ आ गया है। यह कैसे खिसककर आ गया, यहाँ इसपर गौर करना नहीं है। लेकिन बनारसवालोमे एक खास आदत है, वह यह कि वे अधिक फैलावमे बसना नही चाहते, फिर गंगा, विश्वनाथ मन्दिर और बाजारके निकट

रहना चाहते है। जब जी चाहा उनसे गंगामें गोता मारा और ऊपर घर चले आये। बाजारसे सामान खरीदा, विश्वनाथ दर्शन किया, चट घरके भीतर। फलस्वरूप गंगाके किनारे-किनारे घनी आबादी बसती गयी। जगह संकुचित, पर धूप खाने तथा गंगाकी बहार लेने और पड़ोसियोकी बराबरी में तीन-चार मंजिल मकान बनाना भी ज़रूरी है। अगर सारी ज़मीन सीढ़ियाँ ही खा जायँगी तो मकानमे रहनेको जगह कहाँ रहेगी? फलस्वरूप ऊँची-नीची जैसी पत्थरकी पटिया मिली, फिट कर दी गयी--लीजिये भैयाजीकी हवेली तैयार हो गयी। चूँकि बनारसी सीढ़ियोपर चढ़ने-उतरनेके आदी हो गये है, इसलिए उनके लिए ये खतरनाक नहीं है, पर मेहमानों तथा बाहरी अतिथियोंके लिए यह अवश्य है।

काशीके घाट

विश्वकी आश्चर्यजनक वस्तुओंमे बनारसके घाटोंको क्यों नहीं शामिल किया गया—पता नहीं, जब कि दो मील लम्बे पंक्तिवार घाट विश्वमें किसी नदी तटपर कहीं भी नहो है। ये घाट केवल बाढ़से बनारसकी रक्षा नही करते, बल्कि काशीके प्रमुख आकर्षण केन्द्र है। जैन ग्रन्थोंके अध्ययनसे पता चलता है कि प्राचीनकालमें काशीके घाटोके किनारे-किनारे चौड़ी सड़कें थी, यहाँ बाजार लगते थे। वर्त्तमान घाटोकी निर्माण-कला देखकर आज भी विदेशी इजीनियर यह कहते है कि साधारण बुद्धिसे इसे नहीं बनाया गया है। रामनगर, शिवाला, दशाश्वमेध, पंचगंगा और राजघाटका निर्माण पानीके तोड़को दृष्टिमे रखते हुए किया गया है ताकि रामनगर तटसे धक्का खाकर शिवालामे नदीका पानी टकराये, फिर वहाँसे दशाश्वमेधसे मोर्चा ले, पंचगंगा और अन्तमे राजघाटसे टक्कर ले और फिर सीधी राह जाय। अगर आपने इस कौशलकी ओर ग़ौर नहीं किया तो कभी करके देख ले। इस कौशलपूर्ण निर्माणका एकमात्र श्रेय राजा बलवन्त सिहको है, जिन्होने अपने समकालीन राजाओंकी सहायतासे

बनारसको बाढोसे मुक्ति दिला दी है, अन्यथा अन्य शहरोकी तरह बनारस-को भी बाढ़ बहा ले जाती ।

घाटोंकी सीढ़ियोंकी उपयोगिता

सीढियोका दृश्य काशीके घाटोमें ही देखनेको मिलता है। चूंकि काशी नगरी गंगाकी सतहसे काफी ऊँचे धरातलपर बसी है इसलिए यहाँ सीढ़ियोकी बस्ती है। काशीके घाटोको आपने देखा होगा, उनपर टहले भी होगे। लेकिन क्या आप बता सकते है कि केदारघाटपर कितनी सीढ़ियाँ है? सिधिया घाटपर कितनी सीढ़ियाँ है? शिवालेसे त्रिलोचनतक कितनी बुर्जियाँ है? साफा लगाने लायक कौन-सा घाट अच्छा है? आप कहेगे कि यह बेकारका सरदर्द कौन मोल ले। लेकिन जनाब, हरिभजनसे लेकर बीडी बनानेवालोकी आम सभाएँ इन्ही घाटोपर होती है। हजारो गुरु लोग इन घाटोपर साफा लगाते है, यहाँ कविसम्मेलन होते है, गोष्ठियाँ होती है, धर्मप्राण व्यक्ति सर्राटेसे माला फेरते है, पण्डे धोतीकी रखवाली करते है, तीर्थयात्री अपने चंदवे साफ करवाते है। यहाँ भिखमंगोकी दुनिया आबाद रहती है और सबसे मजेदार बात यह है कि घरके उन निकलुओको भी ये घाट अपने यहाँ शरण देते है जिनके दरवाजे आधी रातको नही खुलते। ये घाटकी सीढियाँ बनारसका विश्रामगृह है, जहाँ सोनेपर पुलिस चालान नही करेगी, नगरपालिका टैक्स नहीं लेगी और न कोई आपको छेड़ेगा। ऐसी है बनारसकी ये सीढ़ियाँ।

: बनारसकी सुबह :

बनारसकी सुबह, इलाहाबादकी दोपहर, लखनऊकी शाम और बुन्देलखण्डकी रात सारे भारतमें प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि आत्महत्या के लिए उद्यत व्यक्तिको यदि सुबह बनारसमे, दोपहरको इलाहाबादमे, शामको लखनऊमे और रातको बुन्देलखण्डमें घुमाया जाय तो उसे अपने जीवनके प्रति अवश्य मोह उत्पन्न हो जायगा और शायद उसमे कवित्वकी भावना भी जाग्रत हो जाय। उत्तर प्रदेशके साहित्यिक गढ़ इसके प्रमाण है।

यदि आपने बनारसकी सुबह नहीं देखी है तो कुछ नही देखा। बनारसका असली रूप यहाँ सुबहको ही देखनेको मिलता है। अब सवाल यह है कि बनारसमें सुबह होती कब है? अंग्रेजी सिद्धान्तके अनुसार या हिन्दू ज्योतिषके अनुसार, इसका निर्णय करना कठिन है। लगे हाथ उसका उदाहरण भी ले लीजिए। अपने राम पैदाइशी ही नहीं, खानदानी बनारसी है, इस शहरकी गलियोमे नंगे होकर टहले है, छतोपर कनकौवे उड़ाये है, पान घुलाया है, भाँग छानी है और गहरेबाजी भी की है। लेकिन आजतक हम खुद ही नहीं जान पाये कि बनारसकी सुबह होती कब है?

दो-तीन वर्ष पहले की बात है, काशीके कुछ साहित्यिकोके साथ कवि सम्मेलनसे लौट रहे थे। जाड़े की अँधियारी रात। बारह बज चुके थे। घाट किनारे नाव लगी। हमने आश्चर्यके साथ देखा—एक आदमी दातौन कर रहा था। जब यह पूछा गया कि इस समय दातौन करनेका क्या तुक है, तब उसने एकबार आसमान की ओर देखा और फिर

कहा—'सुकवा उगल बाय, अब भिनसारमें कितना देर बाय।' अर्थात् शुक्र ताराका उदय हो गया है, अब सवेरा होनेमें देर ही कितनी है? इतना कहकर उसने कुल्ला किया और बम महादेव की आवाज लगाता हुआ डुबकी मार गया। यह दृश्य देखकर कोट-चादरके भीतर हमारे बदन काँप उठे।

सुबहके चार बजेसे सारे शहरके मन्दिरोंके देवता अँगड़ाई लेते हुए स्नान और जलपानकी तैयारीमें जुट जाते हैं। मन्दिरोंमें बजनेवाले घडियालो और घंटोंकी आवाजसे सारा शहर गूँज उठता है। सड़कके फुटपाथोंपर, दुकानकी पटरियोंपर सोयी हुई जीवित लाशें कुनमुना उठती हैं। फिर धीरे-धीरे बीमार तथा बूढ़े व्यक्ति—जिन्हें डाक्टरोंकी खास हिदायत है कि सुबह जरा टहला करें—सडकोंपर दिखायी देने लगते हैं। मकानोंके वातायनसे छात्रोंके अस्पष्ट स्वर, गंगा जानेवाले स्नानार्थियोंकी भीड़ और गहरेबाज इक्कों और रिक्शोंके कोलाहलमें सारा शहर खो जाता है।

कञ्चनजंघाकी सूर्योदयकी छटा अगर आपने न देखी हो अथवा देखनेकी इच्छा हो तो आप बनारस अवश्य चले आइये। यह दृश्य आप काशीके घाटोंके किनारे देख सकते हैं। मेढककी छतरियों जैसी घुटी हुई अनेक खोपड़ियाँ, जिन्हें देखकर चपतबाजी खेलनेके लिए हाथ खुजलाने लगता है, नाइयोंके पास लेटे हुए मालिश कराते हुए जवान पट्ठे, आठ-आठ घटे स्पीडके साथ माला फेरते हुए भक्त, ध्यानमें मग्न नाक दबाये भक्तिने, कमण्डलमें अक्षत-फूल लिए संन्यासियों तथा स्नानार्थियोंका समूह, अशुद्ध और अस्पष्ट मंत्रोंका पाठ करते दक्षिणा सँभालती हुई पंडोकी जमात, साफा लगानेवाले नवयुवकोंकी भीड और बाबा भोलानाथकी शुभ कामनाओका टेलीग्राफ पहुँचानेवाले भिखमंगोंकी भीड सब कुछ आपको काशीके घाटोंके किनारे सुबह देखनेको मिलेगा।

मीरज़ा ग़ालिबकी वकालत

अगर आपको मेरी बात यकीन न हो तो नजमुद्दौला, दबीरुल्मुल्क, निजाम जंग मीरज़ा असदुल्ला बेग खा उर्फ मीरजा ग़ालिबका बयान ले लीजिये :—

त आलल्ला बनारस चश्मे बद दूर
बहिश्ते खुर्रमो फ़िरदौसे मामूर
इबातत ख़ानए नाकूसियाँ अस्त
हमाना कावए हिन्दोस्तां अस्त

[हे परमात्मा, बनारसको बुरी दृष्टिसे दूर रखना क्योंकि यह आनन्द-मय स्वर्ग है। यह घण्टा बजानेवालों अर्थात् हिन्दुओकी पूजाका स्थान है यानी यही हिन्दुस्तानका काबा है।

बुतानशरा हयूला शोलए तूर
सराया नूर, ऐज़द चश्म बद दूर
मिया हा नाजुको दिल हा तुवाना
जे नादानी बकारे ख्वशे दाना
तबस्सुम बस कि दर दिल हा तिबी ईस्त
दहन हा रश्के गुल हाए रबी ईस्त
जे अंगेजे क़द अन्दाजे ख़रामे
ब पाये गुल बुने गुस्तरदः दामे

[यहाँके बुतो अर्थात् मूर्तियों और बुतो अर्थात् सुन्दरियोंकी आत्मा तूरके पर्वतकी ज्योतिके समान है। वह सिरसे पाँवतक ईश्वरका प्रकाश है। इनपर कुदृष्टि न पडे। इनकी कमर तो कोमल है, किन्तु हृदय बलवान् है। यों इनमें सरलता है, किन्तु अपने काममे बहुत चतुर हैं। इनकी मुस्कान ऐसी है कि हृदयपर जादूका काम करती है। इनके मुखड़े इतने सुन्दर है कि रबी अर्थात् चैतके गुलाबको भी लजाते है। इनके

शरीरकी गति तथा आकर्षक कोमल चालसे ऐसा जान पड़ता है कि गुलाबके समान पाँवके फूलोंका जाल बिछा देती है।]

ज ताबे जलवये ख्वेश आतिश अफ़रोज़
बयाने बुतपरस्तो बरहमन सोज़
ब लुत्फ़े मौजे गौहर नर्म रू तर
ब नाज़ अज़ खूने आशिक गर्म रू तर

[अपनी ज्योतिसे, जो अग्निके समान प्रज्वलित है, यह बुतपरस्त तथा बरहमनकी बोलनेकी शक्ति भस्म कर देती है अर्थात् यह इनका सौन्दर्य देखकर मूक हो जाते है। पानीमें उनका विलास मोतीकी लहरोंसे भी नर्म और कोमल जान पडता है। पानीमें स्नान करनेवाली जो अठखेलियाँ करती हैं, उनसे जो पानीके छींट उठते है, उनकी ओर कविका संकेत है। उनका नाज अर्थात् हास-विलास आशिक़के ख़ूनसे भी गर्म है।]

ब सामाने गुलिस्तां बर लबे गंग
ज़ ताबे रुख चिरागां बर लबे गंग
रसादः अज़ अदाए शुस्त व शूए
ब हर मौज़े नवेदे आबरूए
क़यामत क़ामतां, मिज़गां दराजां
ज़ मिज़गां बर सफ़े-दिल तीरः बाज़ां
ब मस्ती मौज रा फरमूदः आराम
ज़ नग़ज़े आब रा बख़्शिन्दा अन्दाम

[गंगा किनारे यह क्या आ गयीं एक उद्यान आ गया है। इनके मुखके प्रकाशसे गंगाके किनारे दीपावलीका दृश्य हो गया है। उनके नहाने-धोनेकी अदासे प्रत्येक मौजको आबरूका आमंत्रण मिलता है। इन सुन्दर डील-डौलवाली तथा बड़ी-बड़ी पलकोंवाली सुन्दरियोंसे कयामत आती है। यह दिलकी पंक्तिपर अपनी बड़ी बरौनियोंसे तीर चलाती है।

अपनी मस्तीसे इन्होने गंगाकी लहरोको शान्त कर दिया है। अपनी सुन्दरतासे इन्होने पानीको स्थिर कर दिया है।]

फ़तादः शोरिशे दर क़ालिबे आब
ज़ माही सद दिलश दर सीना बेताब
ज़ ताबे जलवा हा बेताब गश्तः
गोहर हा दर सदफ़ हा आब गश्तः
ज़ बस अर्ज़े तमन्ना मी कुनद गंग
ज़ मौजे आवहा वा मी कुनद गंग

[पुनः पानीके शरीरके अन्दर इन्होने हलचल उत्पन्न कर दी और सीनेमे सैकड़ो दिल मछलीके समान छटपटाने लगे। अपने सौन्दर्यकी उष्णतासे विकल होकर वह पानीमें चली गयीं और ऐसा जान पड़ता है जैसे सीपमे मोती हो। गंगा भी अपने हृदयकी अभिलाषा प्रकट करती है और अपनी पानीकी लहरोको खोल देती है कि आओ इसमें स्नान करो।]

बनारसकी सुबहकी तारीफमें मीरज़ा ग़ालिबका यह कलाम पेश करनेके बाद यह जरूरी नहीं कि ऐरो-गैरोकी भी गवाही पेश करूँ। गोकि एक शायरने यह तकरीर पेश की है कि सुबहके वक्त आसमानके सारे बादल बनारसकी गंगामे डुबकी लगाकर पानी पीते है और फिर उसे सारे हिन्दुस्तानमें ले जाकर बरसा देते है। उस शायरका नाम याद नहीं आ रहा है, इसके लिए मुझे दुःख है।

बनारसी निपटान

सुबहके समय पहले लोग प्रातः क्रियासे निवृत्त होते है, इस क्रियाको बनारसी शब्दमें 'निपटान' कहते है। बनारस नगरपालिकाकी कृपासे अभी तक भारतकी सांस्कृतिक राजधानी और अनादिकालकी बनी नगरीमें सभी जगह 'सीवर' नहीं गया है। भीतरी महालमे जानेपर भी वहाँ गर्मी

की दोपहरको लाइटकी जरूरत महसूस होती है। फलस्वरूप अधिकाश लोगोंको बाहर जाकर निपटना पडता है। निपटान एक ऐसी क्रिया है जिसे बनारसी अपने दैनिक जीवनका सबसे बड़ा महत्त्वपूर्ण कार्य समझता है। बनारससे बाहर जानेपर उसे इसकी शिकायत बनी रहती है। एकबार काशीके एक प्रकाण्ड पंडित सक्खर गये। वहाँसे लौटनेपर सक्खर-यात्रा पर लेख लिखते हुए लिखा—'हवाई जहाजपर निपटानका दिव्य प्रबन्ध था।' कहनेका मतलब यह कि हर बनारसी निपटानका काफ़ी शौक रखता है।

बनारसमें एक ओर जहाँ मन्दिरोकी घंटियोकी आवाजे गूँजा करती हैं, वहीं सूर्योदयके पहलेसे ही बनारसकी हर गली और सड़क पर 'लैऽल पोतनी मट्टी, गोपीगंजका बण्डा, रामनगरी भण्टा, जौनपुरी पियाज, पहाडी आलू, माघी मिर्चा, कन्धारी अनार, काबुली सेव और बम्बइया केला' की आवाजे गूँजा करती है। यहाँ भारतकी प्रसिद्ध तरकारियाँ बिकती है, मेवे बिकते है, भले ही उनकी उपज बनारसके आस-पास तक न हो।

: तीन लोकसे न्यारी :

बनारसमें जो एकबार आया वह यहींका हो गया। बनारसकी मिट्टीमे वह तासीर है कि जो यहॉ आकर बसा, वह 'रामनाम सत्य है' के 'मंत्रोच्चार' में हीं टलनेकी सोचेगा। यह सिफ्त यहॉकी आबोहवामे है और मस्त भरी जिन्दगीमे है। शायद इसीलिए शेख अली हजी फरमा गये है—

'अज़ बनारस न रवम मअबदे आम अस्तईज।
हर बरहमन पेसरे लछमनो राम अस्तईज॥
परी रूख़ाने बनारस ब सद करिश्मो रग।
पय परास्तिशे महादेव चूँ कुनन्द आरंग॥
ब गग गुस्ल कुनंद व बसंग या मालंद।
ज़हे शराफते संग व जहे लताफ़ते गंग॥'

अर्थात्—'मै बनारससे नहीं जाऊँगा, क्योकि यह सबकी उपासनाका स्थान है। यहॉका प्रत्येक ब्राह्मण राम और लक्ष्मण है। यहॉ परियों जैसी सुन्दरियॉ सैकडो हाव-भावके साथ महादेव जी की पूजाके लिए निकलती है। वे गंगामें स्नान करती है और पत्थरपर अपने पैर घिसती है। क्या ही उस पत्थरकी सज्जनता है और क्या ही गंगा जी की पवित्रता।'

आज भी किसी बनारसीसे आप यह सवाल पूछे कि आखिर बनारसमें ऐसी कौन सी सिफ्त है जिससे तुम्हें इतनी मुहब्बत है तो वह यही कहेगा कि हिन्दुस्तानमे तमाम बाते मिल सकती है, पर बनारस जैसी अलमस्ती और बनारसियो जैसा अपनत्व नही मिलेगा, फिर 'बहरी अलंग' की बहारके लिए तो देवताओ तककी जिह्वासे तरलता छूटती है!—जी, जनाब, ऐसा है, अपना बनारस!

बहरी अलंग क्या है ?

बहरी अलॅग वह 'स्वर्ग' है जहॉ जानेपर वह भावनाऍ उत्पन्न होती हैं जो हिलारीके मनमें एवरेस्टपर पैर रखते वक्त उत्पन्न हुई थीं। इसका यह अर्थ नही कि बनारसी लोग वैराग्यकी साधनाके लिए वहॉ जाते है, नहीं, वे तो पूरी पलटन रेजगारियों (बच्चो) के साथ जीवनका आनन्द लेनेके लिए जाते है।

अजगर करे न चाकरी, पंछी करे न काम।
दास मलूका कह गये, सबके दाता राम॥

इस सिद्धान्तका पालन प्रत्येक बनारसी करता है। भले ही घरमे चूहे डण्ड पेलते हों, पर बहरी अलंग जानेका निश्चय खंडित नहीं हो सकता। हडताल हो या मार्शल-ला, राजा मरे या रानी, अगर उस दिन किसी कारण-वश दफ्तर या दूकान बन्द है तो बैठे ठाले वह सीधे बहरी अलंग जानेका प्रोग्राम बनायेगा। जिस प्रकार रोजगारियोको सफ़र करते समय भी घाटा-मुनाफ़ा जोड़नेकी झक सवार रहती है, नेताओको हर बातमे राजनीति घुसेड़नेकी सनक सवार रहती है, ठीक उसी प्रकार हर खांटी बनारसीको बहरी अलंग जानेकी धुन सवार रहती है। सच पूछिये तो बहरी अलंग न तो कोई तीर्थस्थल है और न म्यूजियम, वहॉ न तो कोई सरकारी अतिथिशाला है और न दर्शनीय स्थल। वह है, केवल बनारसियोके मौज-पानी लेनेका दिव्य स्थल। यहॉ गुरु लोग जरा स्वच्छन्द होकर विचरण करते है।

बहरी अलंग उन्ही क्षेत्रोको कहा जाता है जहॉ पक्का तालाब हो और उस तालाबमे चौरस पत्थरके घाट हो, जिसपर प्रेमसे साफा लगाया जा सके। अगर तालाब नहीं है तो फर्स्ट क्लासका कुऑ हो, आस पास घने वृक्ष हों। निपटने लायक लम्बा-चौड़ा मैदान हो जो अत्यन्त स्वच्छ हो, वर्ना भाई लोगोकी ठीक वैसी ही मुद्रा हो जाती है जैसी अफीमचीकी इमली देखकर हो जाती है।

बनारसी निपटनेके अत्यन्त प्रेमी होते है। भोजन चाहे जैसा मिले, सोनेकी जगह कण्डम हो, पर निपटनेका स्थान दिव्य होना चाहिए। साफा लगाने लायक चौरस भूमि चाहिए। अगर उसे इन दोनों स्थानोंकी कमी अखरी तो वह बराबर असन्तुष्ट रहेगा। भले ही उसे मीलोंका चक्कर लगाना पड़े, पर उसे दिव्य स्थान चाहिए। यही वजह है कि बनारसी लोग जब बनारसके बाहर जाते है तब निपटने-नहानेके दिव्य स्थान ही तजवीजते हैं।

मुख्य कार्य-क्रम

सारनाथ, रामनगरके अलावा और जितने बहरी अलंगके क्षेत्र है, वहाँ पलटन लेकर लोग नहीं जाते। वहाँ केवल नेमी लोग जाते है। कुछ लोग गहरेबाजपर जाते है और कुछ दौड़ लगाकर। जिस प्रकार किसी-किसी संस्थाके सदस्य एक खास किस्मकी पोशाक पहनते है, ठीक उसी प्रकार बहरी अलंगके प्रेमी भी सेनगुप्ताकी धोती, गावटीका गमछा, लंगोट या मिश्टी और वृन्दावनी दुपट्टेका प्रयोग करते है। धोती-दुपट्टा न रहे तो कोई हर्ज नहीं, पर गमछा और लंगोटका रहना ज़रूरी है। आवश्यक सामानोंमें लोटा, बाल्टी, डोरी, लोढ़ा (सिल वहाँ मिल ही जाती है,) साबुनकी बट्टी, तेलकी शीशी और विजयाका पैकेट प्रत्येक प्रेमी अपने साथ रखता है।

बहरी अलंग पहुँचते ही लंगोटके अतिरिक्त नंग-धड़ंग होकर पहले भाँगको खूब साफकर बूटी तैयार कर ली जाती है। बूटी छाननेके पश्चात् नटई तक (आकण्ठ) पानी पीकर हंड़िया या बाल्टी लेकर लोग निपटने जाते है। उनके निपटनेकी क्रिया अध्ययन करने योग्य है। घण्टा-आधा घण्टा निपटना साधारण बात है। कुछ ऐसे भी लोग है जो कई घण्टे तक निपटते ही रह जाते है।

निपट चुकनेके बाद एक दूसरेकी मालिश तबतक करते रहेंगे जबतक बदनका टेम्परेचर १०० डिग्रीसे ऊपर न पहुँच जाय। इसके बाद स्नान करते हैं और तब हजार-पन्द्रह सौ डण्ड-बैठक करते है। अगर गदा, जोडी खाली मिली तो उसपर भी रियाज कर लेना अच्छा समझते है। अगर ये साधन खाली न मिले तो तबतक 'बॉह' करते रह जायेंगे जब तक वह खाली न हो जॉय।

जिस प्रकार हम एक ही प्रकारका भोजन नित्य खाते-खाते ऊब जाते है तब एक दिन सरस भोजन खानेकी इच्छा होती है, ठीक उसी प्रकार वर्षमें दो बार निश्चित रूपसे हर बनारसी अपने परिवारको लेकर सारनाथ और रामनगर अवश्य जाता है। इन दोनो स्थानोके मेले देखने योग्य होते है। परिवारके साथ रहने पर भी गुरुओंके कार्यक्रममें कोई बाधा उपस्थित नहीं होती। उसी तरहसे भाग छानते है, साफा लगाते है और नहाते-निपटते है। यहॉ सब कामसे खाली होनेपर बाटी, चुरमा, दाल, भात और फर्स्ट क्लासकी तरकारी खाते है। भोजनका यह मजा दिल्लीके अशोक होटलमे और बम्बईके ताजमहलमें भी दुर्लभ है।

दंगलके प्रेमी

बहरी अलगका ही ऐसा प्रभाव है कि बनारसमे आये दिन दंगलकी प्रतियोगिता होती है। नागपंचमीका पर्व भारतमे चाहे जिस ढंगसे मनाया जाता हो, पर यहॉ छोटे गुरु बड़े गुरुके रूपमे पूजा करते हुए सम्पूर्ण बनारसमें दंगल प्रतियोगिता की जाती है।

बनारसमें आज दंगलकी प्रतियोगिता केवल पट्ठोंके बीच ही नही, जानवरोंमे भी व्याप्त है। आये दिन सड़कोंपर सॉड़ गरजते हुए लडते है। भैंस, मेढ़ा और पक्षियोंका अनोखा दंगल प्रत्येक वर्ष जाड़ेमें अवश्य होता है। बुलबुल, तीतर और बटेरका भी युद्ध होता है। मकर-संक्रान्तिका पर्व पक्षियोके दगलका खास दिन है। लोग अपने-अपने पक्षियोका दंगल उस दिन अवश्य कराते है। यह दगल केवल दंगलके लिए नहीं, बाजी

लगाकर किये जाते है। बनारस ही एक ऐसा नगर है जहाँ इस प्रकारका आयोजन होता है। कजली-बिरहा और चनाजोर वालोका शायरीका दंगल भी बरसातके दिनोमे देखनेमें आता है। कबड्डी और तैराकीका दगल गर्मीके मौसममें होता है। फैन्सी ड्रेसका दंगल तो यहाँ प्रत्येक मेलेमे देखा जा सकता है।

बहरी अलंगका वास्तविक अर्थ विश्वकोषमे क्या है, पता नहीं। लेकिन बहरी अलंगकी मिट्टीमें वह बहार है जो बम्बईकी चौपाटीमे नही, धर्मतल्लाकी ब्यूटीमें नहीं और न कनाट सरकसकी नफासतमें है! बनारसियोको अपने इस क्षेत्रपर जितना गर्व है, उतना अपने नगरके प्रति नहीं है। बनारस और बनारसियोका असली रूप देखना हो तो बहरी अलंग अवश्य देखिये। बिना बहरी अलंग देखे आप यह कभी नही जान पाइयेगा कि बनारसियोको अपने बनारससे इतनी मुहब्बत क्यो है? बहरी अलंग केवल दिलबहलावका क्षेत्र नही, बल्कि अध्यात्म और साधनाका क्षेत्र भी है।

बनारसके बड़े-बूढ़ोको जब रंग जमाना होता है तब वे बहरी अलंगके कितने प्रेमी थे, इसका उदाहरण पेश करते हुए कहते है—'जेतना हंडिया निपटके फेक देहले होब, ओतना तोहार बापौ न देखले होइयन।' बहरी अलंगमें जब लोग निपटने जाते है तब आबदस्तके लिए मिट्टीकी हंड़ियामे पानी ले जाते है।

तीन लोकसे न्यारेपनका सार्टिफिकेट दिलानेमे, 'बहरी अलंग' का महत्त्वपूर्ण योग रहा है। मर्त्यलोकको मारिये गोली, स्वर्ग तकमे बनारसके 'बहरी अलंग' की मिसाल नही। हमारी सरकार, आधुनिकता और प्लानोके जोशमे, बहुत-से ऐसे स्थानोको 'भीतरी' यानी शहरी रंग दे रही है—बनारसियोंके समक्ष निस्सन्देह एक कठिन समस्या है यह!

बनारसी के लिए 'बहरी-अलंग' का सर्वोपरि महत्व है।

: बनारसी :

इलाहाबादी, मुरादाबादी और बनारसी आदि शब्दोंके आगे-पीछे यदि अमरूद, लोटा, लँगड़ा आम जैसे शब्द न जोड़े जायँ तो इसका अर्थ होगा—इन शहरोंके निवासी। उत्तरप्रदेश एक ऐसा राज्य है जहाँके शहरोके नामके पीछे 'ई' लगा देनेसे अर्थ वहाँ के निवासीसे हो जाता है। जैसे बनारसी, मलीहाबादी, आजमगढ़ी, सहारनपुरी, गोरखपुरी, रामपुरी, इलाहाबादी, मीरजापुरी और फरूखाबादी आदि। किसी शहरमें बस जानेका यह मतलब नहीं कि उस व्यक्तिको उस शहरका निवासी मान लिया जाय। अकसर आपने लोगोंको कहते सुना होगा—'भाई, गाँव जाना है।' 'देशमें बहिनकी शादी है।' 'घरपर हालत ठीक नही है, रुपये भेजने है।' आदि। इससे यह स्पष्ट है कि वह व्यक्ति मौजूदा समय जहाँ है, उसे अपना शहर नहीं मानता और न वहाँका रजिस्टर्ड बाशिन्दा हो गया है—इसे स्वीकार करता है, रोजी-रोजगारके लिए टिका हुआ है। भले ही वह बाहर जाकर अपनेको उस शहरका निवासी घोषित करे, लेकिन मन, वचन और कर्मसे वह उस शहरका निवासी नही हैं। ठीक इसी प्रकार बनारसमें रहनेवाले सभी बनारसी नहीं है।

बनारसी कौन ?

आखिर असली बनारसी है कौन ? उनकी पहचान क्या है ? पहले आपको यह जान लेना चाहिए कि बनारसी कहना किसे चाहिए। बनारसमें पैदा होने या पैदा होकर मर जानेसे बनारसी कहलानेका हक हासिल नहीं होता। इस प्रकारके अनेक बनारसी नित्य पैदा होते है और मरते है। क्या वे सभी बनारसी हैं ? कभी नहीं। बनारसमें पैदा होना, बनारसमें

आकर बस जाना या बनारसी बोली सीख लेना भी बनारसी होनेका पक्का सबूत नहीं है। हिन्दुस्तानको इस बातका फ़ख़ है कि उसके कुछ शहर ऐसे है (और उनमे बनारसका महत्त्व सर्वोपरि है) जहॉके निवासियोकी अदा अपनी है। दूसरोका उसमे मिल सकना उतना ही कठिन है जितना तेलका पानीमे मिलना। आप कुछ ही दिनके अभ्याससे लन्दनवी, न्यूयार्की, बम्बइया या कलकतिया भले ही बन जायॅ, परन्तु बनारसी बन सकना कठिन होगा। प्रसंगवश एक घटना याद आ गयी। हिन्दीके एक (अपनेको धाकड कहनेवाले) लेखक कुछ ही महीनेके लिए कलकत्तेसे आकर बनारसमे टिक गये। उन्होंने आव देखा न ताव, चटपट एक कहानी बनारसकी 'रियल' अलमस्तीको आधार बनाकर लिख डाली। परिणाम वही निकला जो सूरजपर थूकनेसे निकलता है। ऐसे ही 'डालडा ब्राड' बनारसियोंका वर्ग आज समूचे भारतमे बनारसको बदनाम कर रहा है। बनारसके बाहर बनारसीको इतना खतरनाक समझा जाता है कि कोई भी शरीफ आदमी उसे अपने यहॉ नौकर नहीं रखना चाहता। लेकिन इस अपवादको स्वीकार करनेके पहले इस बातको दिमाग़मे फिट कर लीजिये कि असली बनारसी बनारसके बाहर जाकर रहना पसन्द नहीं करता। यदि उसे काफी इज्जतदार नौकरी मिले तो शायद चला भी जाय, लेकिन उसका मन बनारसमें ही अटका रहेगा।

बम्बई, कलकत्ता, कानपुर, दिल्ली और पटना आदि नगरोंमें रहते हुए जो लोग अपनेको बनारसी कहते है, उनसे अगर कभी यह पूछें कि आप बनारसके किस मुहल्लेमे रहते है तो कहेंगे—'मेरा घर देहातमें है।' फिर ऐसे गावका नाम बतायेगे जिसका नाम आपने कभी न सुना होगा। लगभग सारे भारतमे एक बड़ा वर्ग पानवालोंका है जो 'बनारसी पानवाला' का साईनबोर्ड लगाकर कमा-खा रहे है। गोया बनारससे जो बाहर जाते है, सभी पनवाड़ी होते है अथवा बनारसमें पनवाड़ियोंका कोई विश्वविद्यालय है जहाँ पनवाड़ीकी डिग्री दी जाती है, जिसे लेकर लोग बनारसका नाम

रौशन करनेके लिए बैठ गये है। झूठ तो नहीं कहना चाहता, पर लगभग सारे देशमें 'टहरान' दे चुकनेके बाद मुझे यह अनुभव हो गया कि बनारसके अलावा अन्य शहरोमे जितने बनारसी पानवाले है, उनमें अधिकतर 'नान-रियल' है। यदि आपको विश्वास न हो तो—'बनारसमे कवने महल्लामे घर हवऽ—केतना दिनसे इहाँ हउवऽ ?' पूछे तो स्वयं ही स्पष्ट हो जायगा। जब दो बंगाली, मद्रासी या गुजराती आपसमे मिलते है तब अपनी भाषामे ही बातचीत करते है। उसी प्रकार परदेशमे जब अपने शहरका निवासी मिल जाता है तब बडी प्रसन्नता होती है। लेकिन हजरत बनारसी भाषाकी सड़कपर अडियल टट्टू ही सिद्ध होते है। फिर, 'अपना घर देहातमे है' बतायेगे ताकि आगे आप और सवाल न पूछ सके। अगर वह अपनेको इसपर भी बनारसी कहे तो उसके पान लगानेके ढगसे आप अच्छी तरह समझ जायँगे कि ये हजरत बनारसके उस गाँवके निवासी भी नही है। महज अपनी साख जमानेके लिए 'बनारसी पानवाला' बने हुए है।

मर्त्य लोक ही नही, त्रैलोक्यको पान (ताम्बूल) के मैदानमे बनारस आसानीसे चित्त कर सकता है। बनारसी पानका वही महत्त्व समझना चाहिये, जो समुद्र-मथनके सार अमृतका है। खाँटी बनारसीका भोजन भले ही रोक लें, परन्तु पानका वियोग वह सह नहीं पायगा। बनारसमे ऐसे लोगोकी कमी नहीं, जिनके 'पानका खर्च' किसी भी परिवारके 'घर-खर्च'से उन्नीस ठहरता हो। बनारसी पानके मुखपर दूसरे शहरोंमे पैसा बटोरकर तारकोल लगानेवालोंके लिए अगर वाजिब सजाका अधिकार बनारसीको मिल जाय तो वह क्या तजवीजेगा, इसे कोई बनारसी ही सोच सकता है।

दिल्लीके चाटवाले, आगरेके लच्छेवाले, मथुराके पेड़ेवाले जिस प्रकार हर शहरमे पाये जाते है, ठीक उसी प्रकार लखनऊ, बरेली और आगरामे कुछ खोमचेवाले अपनेको बनारसी खोमचावाला कहते है। वे

गुड़की पट्टी, सोहन पपड़ी और तिलके लड्डू बेचते है। ऐसी थर्डग्रेडी वस्तुओंका कोई खास महत्त्व बनारसमें नहीं, परन्तु बनारसके नामपर दूसरे शहरोंमें कमाईका अच्छा साधन तो है ही।

तीसरा ग्रूप है—साड़ीवालोका। कुछ लोग अपनेको बनारसी साड़ीवाला का नाम देकर बाहर अच्छा रोजगार जमाये हुए है। साफ़-साफ़ यह नहीं कहेंगे कि बनारसमे ठिकाना नहीं लगा अथवा अन्य जगहोकी साड़ीकी पूछ नहीं है और बनारसी साड़ीके नामपर अच्छा पैसा मिल जाता है, इसलिए यह रूप धारण किया है। ऐसे लोग सिर्फ़ बनारससे साड़ी मंगाकर बेचते है। असली बनारसी कारीगर बनारसके बाहर कभी नहीं जाता गत कई वर्षोंमे भारतके बँटवारेके बाद कुछ लोग पाकिस्तानतक टहल आये और फिर वापस आकर बस गये। इसलिए नहीं कि वहाँ कारीगरोकी पूछ नहीं हुई, बल्कि इसलिए कि बनारसके बाहर उनकी कलाकी कीमत आँकनेवाला कोई मिलता नहीं। बनारसमें रहकर वे यहाँ गरीबी और मुँहताजी भले ही स्वीकार कर लेंगे; लेकिन पाकिस्तानकी बादशाहत उन्हें स्वीकार नहीं। एकबार बनारसी साड़ीके कलाकारोंको भूखो मरनेकी बारी आयी तो वे वरुणा नदीके पास जाकर इबादत करते रहे कि इस पीड़ाको दूर किया जाय। यदि उन्हें बनारससे मुहब्बत न होती तो कहीं भी जाकर अपना कारबार कर सकते थे। जहाँ हजारों नकली बनारसी कमा-खा रहे हैं, वहाँ कुछ असली बनारसी कारीगर कमा-खा सकते थे, लेकिन उन्हें यह पसन्द नहीं था कि जिस शहरमे वे पनपे, इज्ज़त कमाई और कलाकार बने--उस शहरकी मुहब्बतको कुछ तकलीफोकी वजहसे छोड़ देते। यही वजह है, आज भी लाख मुसीबत झेलते हुए वे बनारसमें पड़े हुए है। इन्हींकी वजहसे बनारसी साड़ियोंका नाम सारे संसारमें रौशन है।

चौथा ग्रूप सुर्तीवालोंका है। भारतके छोटे-बड़े शहरोंमे बनारसी ज़र्दाके एकमात्र विक्रेता बन बैठे है। माना कि यह प्रचारका युग है—रोज़गार है, लेकिन एक बनारसी सुर्ती विक्रेता अपनी दूकानपर अन्य घासलेटी

सुर्ती बेचना पसन्द नहीं करेगा, लेकिन कई शहरोमें बनारसी जर्दाके नामपर अन्य सुर्तियाँ भी बेची जाती है। जिस प्रकार बी० एस० सी० कम्पनीका साइनबोर्ड लगाये जूतेके दूकानदार बाटा कम्पनीके जूतोके अलावा अन्य कम्पनियोके चालू जूते भी बेचा करते है, ठीक उसी प्रकार ऐसे बनारसो सुर्तीवाले भी कई शहरोमें कमा-खा रहे है। अब अगर उस शहरमें बनारसी जर्देकी खपत नही है तो बनारसको क्यों बदनाम करते है। इससे अच्छा होगा कि आप यह साइनबोर्ड टाँग दें कि 'यहाँ बनारसी जर्दा भी बिकता है।' जिसे बनारसी जर्देका चस्का होगा स्वयं खरीदकर खायगा।

बनारसका लेबिल लगाकर अगर किसी चीजपर सबसे अधिक घपला होता है तो वह है—लँगड़ा आम। बनारसका लँगड़ा आम—नाम सुनकर देश ही नही; विदेशोंमे भी लोगोकी जिह्वापर 'मुखरस गंगा' लहर उठती है। यही कारण है कि लँगड़ा आम बनारसमे, वर्षमें अधिक-से-अधिक दस-पन्द्रह दिन दिखाई पडता है। भाई लोग लँगड़े आमके मामलेमे स्वयं बनारसियोंको ही आसानीसे धोखा देते है।

कहनेका मतलब यह है कि इस प्रकार लोग बाहर जाकर अपनेको बनारसी कहते है। क्या ऐसे लोग बनारसी है? 'कत्तई' नहीं। यह तो बनारसके नामका प्रताप है कि लोग कमा-खा रहे है।

बनारसके बनारसी

अधिक दूर क्यों, खास बनारसमे रहनेवाले सभी बाशिन्दे बनारसी नहीं है। इसमे कितने नकली है और कितने असली—इस भेदको जाननेके पहले जरा और पीछे चलना पड़ेगा। काशीके इतिहाससे यह ज्ञात होता है कि पूर्वकालमे काशीकी अधिकाश भूमि जंगलोंसे आवृत थी। अत्यन्त पवित्र तथा तीर्थभूमि रहनेके कारण अधिकतर ब्राह्मण रहते थे। ब्राह्मणोके बाद जनसंख्याकी दृष्टिसे अहीरोका दूसरा नम्बर था। इन

लोगोंकी सेवाके लिए कुछ शूद्र भी रहते थे। इन तीनो जातियोंके अलावा अन्य कोई जाति नहीं थी। 'मुक्ति-क्षेत्र' होनेके कारण पहले लोग अन्तिम कालके समय यहाँ आते थे। पहले यह प्रथा थी कि घरका कोई व्यक्ति जो बीमारीसे या अन्य किसी कारणवश मरणासन्न हो जाता था उसे गंगायात्री मानकर काशी ले आते थे। ऐसे लोग श्मशानमे असहाय अवस्थामे तबतक पड़े रहते थे जबतक इस दुनियासे सफ़र न कर जायँ। उनके मरनेके बाद ही उनके साथ आये व्यक्ति, उनके घर वापस जाते थे। कभी-कभी श्मशानकी शुद्ध हवा पीकर जब मरणासन्न व्यक्तिमें स्वस्थ होनेके लक्षण दिखाई देने लगते थे तब साथ आये व्यक्ति उसका गला घोट देते थे। कभी-कभी उसे असहाय अवस्थामे छोड़कर चल देते थे। ऐसे व्यक्ति जब स्वस्थ हो जाते तब पुनः अपने कुनबेमें वापस नही जा पाते थे। अपने परिवारमे वे मृत मान लिये जाते थे। गंगायात्री व्यक्तिको यह अधिकार नहीं था कि वह पुनः अपने गाँव वापस जाय। कभी-कभी साथ आये व्यक्ति मरणासन्न व्यक्तिसे अधिक प्रेम रखनेके कारण उनके साथ यहाँ रह जाते थे। इस प्रकार गंगायात्री और उनके परिवारके लोगोसे काशीकी आबादी बढ़ती गयी। फिर धीरे-धीरे हर वर्गके लोग यहाँ आकर बसते गये।

इसके बाद आया यहाँ संन्यासियोका जत्था। गंगायात्रीवाले यहाँ आकर ब्राह्मणोंको दान-दक्षिणा देते, उनसे कथा सुनते और अन्तकालमे मर जाते थे। इनकी दक्षिणाकी रेट बड़ी 'हाई' थी। कुछ लोगोने देखा—गंगायात्रियोकी सारी रकम धर्मके नामपर ये ब्राह्मण हज़म किये जा रहे है तो उन्होने यह धन्धा शुरू किया। वे भी घर-घर जाकर मधुकरी लेने लगे। उन्होने यजमानोंकी सुविधाके लिए यह शर्त रखी—हम दक्षिणा नहीं लेगे, सिर्फ भोजन लेगे। अग्नि नहीं छुएँगे, सिला हुआ कपड़ा नहीं पहनेगे। ब्राह्मणोंका पत्ता काटनेके लिए इनका एक समुदाय बन गया।

बनारसका प्रायः हर व्यक्ति दार्शनिक है। अगर एक चाण्डाल शंकराचार्यको ज्ञानका उपदेश दे सकता है तो यहाँका पण्डित क्या नहीं

कर सकता ? यहाँके लोग कितने पहुँचे हुए सन्त है, इसका अन्दाजा यहाँ गर्मियोके मौसममें देखा जा सकता है। शहरके हर क्षेत्रमे बड़े-बड़े दार्शनिक टहलते हुए नजर आते हैं। दर्शनके गूढ़ रहस्योकी व्याख्या खुलेआम करते है। अब उससे लाभ उठाना न उठाना आपका कर्तव्य है। कुछ लोग इन दार्शनिकोको 'पागल' कहते है। यदि ये सचमुच पागल है तो क्यों नही सरकार इन्हे पागलखाने भेज देती। सरकार इस बातको जानती है कि ये पागल नहीं है—सबके सब पहुँचे हुए सन्त है। गीता, रामायण, महाभारत, कुरान और बाइबिलके अनेक उपदेश बकते रहते है।

इसके बाद एक फौज आयी–विधवाओंकी। जहाँ घरमें नयी बहू आयी और उससे सासकी पटरी नहीं बैठी—बस चली आयी काशीवास करने। फिर जबतक उनकी अर्थी नहीं उठेगी—जानेका नाम नही लेतीं। सिर्फ़ प्रौढ़ा विधवाएँ आतीं तो ग़नीमत थी। इनके साथ कुछ ऐसी महिलाएँ भी आयीं जो विधवा नही थीं। अगर भरी जवानीमें कोई विधवा, सधवा या कुमारी महिलाने ग़लत कदम रखा तो अपनी नाक बचानेकी गरजसे परिवारके लोग ग्रहणके मौकेपर या तीर्थयात्राके नामपर काशीमे लाकर उन्हें छोड़ देते थे अर्थात् इन महिलाओके लिए बनारस अण्डमान-निकोबार द्वीप बन गया। इस प्रकारकी कहानियोंकी कमी हिन्दी-साहित्यमें नहीं है। यदि उनका संस्करण बन्द न हो गया हो तो आज भी पढ़ सकते है।

चौथी फौज उन लोगोंकी आयी जो जिन्दगीभर दूसरोको सताते रहे, जरायम पेशा करते रहे और अन्तिम कालमें रिटायर्ड होते ही बनारसमें आकर बस गये, ताकि गंगास्नान और विश्वनाथ दर्शनसे सारे पाप धुल जायँ। बनारस क्या हो गया, मुक्तिदानका कार्यालय हो गया। मजा यह कि ऐसे लोग भी अपनेको पक्का बनारसी कहते है।

अन्तिम दल उन लोगोका आया जो नौकरी और रोजगारके सिल-सिलेमे आकर बनारसमे बस गये। ऐसे लोग भी बड़े गर्वसे अपनेको बनारसी कहते है। अभी जुमा-जुमा आठ रोज हुए आपको आये, दूधके दाँत भी नही गिरे अर्थात् न अच्छी तरह आपने बनारस छाना, लेकिन अपनेको पक्का बनारसी समझने लगे। ऐसे लोग महीनेमे दस खत, एक मनीआर्डर अपने गाँव भेजते है और स्वयं एकबार सालमे वहाँका चक्कर काट आते है। कुछ लोग ऐसे भी है जो बनारसमे रहते हुए भी बनारसको 'कण्डम', 'गदाई' और 'लोफरोंका शहर' कहते फिरेगे। ऐसे लोगोमे उनकी ही संख्या अधिक है जिन्हें 'बनारसी' बननेके प्रयत्नमे मुँहकी खानी पड़ी है। बेचारोंको खिसियानी बिल्लीकी तरह खम्बा नोचते देखकर सच्चे बनारसियोंके मुखसे सहानुभूतिके शब्द निकल जाते है—'बउरायल हौ।'

हजरत रहते है बनारसमे, लेकिन अखबार पढ़ेगे कलकत्ता, पटना, अमृतसर, दिल्ली और नागपुरके। उनका बनारसके समाचारसे कोई ताल्लुक नहीं। इससे साफ स्पष्ट है कि ऐसे लोग बनारसको अपना नहीं समझते।

अब आप ही सोचिये, क्या ऐसे लोग बनारसी है? क्या इनमें कभी बनारसीपन आ सकता है? जब यही लोग तीन-चार पुश्त रह जायँगे और इनकी औलादोंमे बनारसी हवाका असर हो जायगा तब वे गर्वसे अपनेको बनारसी कहने लगेगे—फिर भी रहेंगे अधकच्चरे ही।

असली बनारसी

एक बनारसी जो सही मानेमे बनारसी है, जिसके सीनेमें एक धडकता हुआ दिल है और उस दिलमे बनारसी होनेका गर्व है, वह कभी बनारसके विरुद्ध कुछ सुनना या कहना पसन्द नहीं करेगा। यदि वह आपसे तगड़ा है तो जरूर इसका जवाब देगा, अगर कमजोर हुआ तो

गालियोंसे सत्कार करनेमें पीछे न रहेगा। बनारसके नामपर कलंकका धब्बा लगे ऐसा कार्य कोई भी बनारसी स्वप्नमें भी नहीं कर सकता। जिसे अपने बनारसपर नाज है, बनारसके अलावा अन्य जगह जिसे 'गदाई' लगती है, जो बनारसके बाहर जाकर बेचैन रहता है, भले उसे वहाँ स्वर्गीय सुख प्राप्त हो, पर हमेशा तकलीफ महसूस करता रहे—वही असली बनारसी है।

अगर वह घरके भीतर गावटीका गमछा पहनकर नंगे बदन रहता है तो वह उसी तरह गंगास्नान या विश्वनाथदर्शन भी कर सकता है। उसके लिए यह जरूरी नहीं कि घरमें फटी लुंगी या निकर पहनकर रहे और बाहर निकले तो कोट-पतलून पहने। दिखावा तो उसे पसंद नहीं। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि वह दरिद्र है या कपड़ोंका उसे शौक नहीं। वह कपडोंका या सफाईका कितना शौकीन है, इसका अन्दाजा घाटपर और उसके घरपर लग सकता है।

आजकल बड़े शहरोंमें लोग घरपर मेहमान आ जानेसे चिढ़ जाते हैं, पर बनारसी चिढ़ता नहीं। उसके लिए मेहमान भगवान्से कम नही होता। वह क्या करे, कौन-सी निधियाँ लाकर इकट्ठी कर दे कि मेहमान प्रसन्न हो उठे—भरसक यही प्रयत्न कराता है। मेहमानके स्वागतमे वह पलकोंके पावड़े बिछा देता है। चलते-चलते वह मेहमानको पूरे बनारससे परिचित ही नहीं कराता बल्कि कुछ ऐसे मधुर संस्मरण भी दे देता है कि मेहमानका हृदय आनन्दसे गद्‌गद हो उठता है। फिर शायद ही वह बनारसके प्रवासको भूल सके। लेकिन यह याद रखे कि बनारसकी संस्कृति अपनी है। एक बनारसी आपको जिस कदर रखना चाहे, उसी प्रकार रहें, तभी वह आपका सम्मान हृदयसे करेगा।

मस्त रहना बनारसियोंका सबसे बड़ा गुण है। इस हाइड्रोजन बमके युगमे जब कि चारों तरफ हाय-हाय मची हुई है, मार्क्सवाद-डालरवादका

झगडा चल रहा है, ऐसे समयमें भी बनारसी लोग अपनी मस्तीसे अलग रहना पसन्द नहीं करते। हड़ताल हो या तूफ़ान आये, पर बनारसी दैनिक कर्मोंमें व्यवधान नही आने देता। गैवीपर गहरी छनती है, उस पार दिव्य निपटानके बाद स्नान करते है, तब जाकर उनकी काया तृप्त होती है। बनारसियोमें सबसे बड़ा गुण है—आत्मीयता। यदि आप परदेशी है, रास्ता भूल गये है तो आपको वह सही रास्ता ही नहीं बतायेगा, बल्कि खाली रहने पर मंजिले मकसूद तक पहुँचा देगा। ऐसी आत्मीयता अन्यत्र दुर्लभ है।

बनारसी स्वभावका बहुत उदार और विशाल हृदयवाला होता है। भगवान् शंकरके नागरिकोको गरीबी भले ही मिली हो, पर उन्हे सन्तोषका गुण सबसे अधिक मिला है। वह जो कुछ करेगा या कहेगा दिल खोलकर, चाहे आपको बुरा लगे या भला। जरूरत पड़ने पर वह दस-बीससे मोर्चा ले सकता है, मैदानमे दो-तीन लाशे गिरा सकता है। अपनी आन और शानके लिए प्राणोकी बाजी लगा देना उसके लिए मामूली बात है। एक ओर वह मक्खनकी तरह नरम है दूसरी ओर पत्थरकी तरह सख्त। जब एक बनारसी यह कहे—'इ बनारस हव, धुर्री बिगाड़ देब' या 'जानलऽ बनारस कऽ रहेवाला हई' तब यह समझ लीजियेगा कि अब इससे छेड़खानी करना कल्याणकर नहीं।

बनारसियोके दिलमे इस बातकी बडी कसक रहती है कि बड़े-बड़े विदेशी नेता जब कभी बनारस आते है तब इतना पर्दानशीन होकर चलते है जैसे मुगलकालमे बेगमे जाती थीं। बनारस आकर अगर बनारसी गुरुओंकी संगत नहीं की, भाँग नहीं छाना, साफा नही लगाया, गहरेबाजी नहीं की और नावपर सैर नहीं की तो बनारस नहीं देखा। लम्बी-चौड़ी गर्दसे ढकी सड़कोपर क्या रखा है? टूटे-फूटे घाटोंके किनारे ऊँचे

महलोंमें क्या रखा है? पुलिसकी सगीनोंके सायेके नीचे आनन्द क्या मिलेगा? जबतक उस परिधिके बाहर आकर साधारण बनारसियोसे घुल-मिलकर उनसे परिचय प्राप्त नहीं करेगा, बनारस क्या एक बनारसीको भी कोई समझ नहीं सकेगा।

: बनारसके राजा :

बनारसके राजाका मतलब आप कहीं काशी नरेश अथवा प्राचीन-कालके काशी नरेशोसे न लगा बैठें, इसलिए इस विषयपर कुछ कह देना आवश्यक है। भारतके स्वतन्त्र होनेके बाद 'लौह पुरुष' का धक्का खाकर राजाओंका अस्तित्व सेंटकी तरह उड गया। आजकल मन्त्रियोका जमाना है। राजाओका अस्तित्व इतिहासकी पुस्तको और शतरंजकी मुहरो तक ही है। प्राचीन कालमे काशी किन-किन राजाओके अधिकारमें रही, कितने राजा यहाँके शासक बने—यह सब विषय इतना लम्बा-चौड़ा है कि उसके लिए रीमो कागज काला करनेकी जरूरत है। फिर उनसे मतलब क्या ? अतएव विषयान्तर न करके अपने विषयपर उतर रहा हूँ।

धार्मिक ग्रन्थो और नागरिकोंके विश्वासके आधारपर यह कहा जा सकता है कि काशी नरेशोका इस नगरीपर अधिकार भले ही रहा हो परन्तु काशीकी जनता हमेशा बाबा भोलेनाथको ही अपना राजा मानती आयी है। बाबा भोलेनाथ हमेशा नगरके मध्य अपनी फेमिलीके सहित रहते आये है। आज भी वे अन्नपूर्णा, गणेश और अपनी पूरी कचहरीके साथ जमे हुए हैं। हिमालयसे अपने साले (सारनाथ) को बुलाकर एक इलाका उन्हें भी दे दिया है। लोगोका दुःख-सुख सुनते हैं। जिनका नहीं सुनते वे लोग उनकी पत्नी अन्नपूर्णा या उनके कोतवाल भैरवनाथके यहाँ जाकर सिफारिश करते है। यही वजह है कि काशीकी जनता इनपर अगाध श्रद्धा रखती है। इनके पास जानेके लिए न विजटिंग कार्ड भेजनेकी आवश्यकता है और न ट्रंककाल करके टाइम फिक्स करनेकी ज़रूरत। न अचकन-चपकन पहननेकी जरूरत है और न गाधी ब्राण्ड। किसी भी अवस्थामें, किसी भी समय आप उनसे जाकर

मिल सकते है। सिर्फ बम-बम या घंटा बजाकर उनके नशेको दूर करनेकी आवश्यकता पड़ती है। प्यारसे उनके बदनपर हाथ फेर सकते है, उन्हें नहला सकते है, सरपर हाथ फेरकर भक्ति दिखा सकते है, गो कि कुछ दिन यह छूट नही रह गयी थी कुछ हरिजनोंने और कुछ उनके पर्सनल असिस्टेण्टोंने झगड़ाकर उन्हें जॅगलेमें बन्द कर दिया था। तब वे सिर्फ नुमाइशी जीव बन गये थे, झरोखेसे झॉकी मात्र देते थे।

इनके पास जानेके लिए डाली या उपहार ले जानेकी जरूरत नहीं है। एक गिलास पानी काफी है। अगर आप वह भी न ले जाना चाहे तो कोई हर्ज नहीं—खाली हाथ जाइये। भक्तिका पारा हाई हो तो एक पैसेकी माला और कुछ बेलपत्र काफी है। काशीके ये राजा जिसपर खुश होते है—छप्पर फाड़कर धन देते है, मुँहमॉगी मुराद मिल जाती है। अपुत्रकको दर्जनों बच्चे, रोजीरोजगारमे बरक्कत, मुकदमेंमे जीत, गरीब-मुँहताजको जमीनमें गड़े मोहरोंका पता और अन्तकालमे मोक्षका सार्टिफिकेट तो साधारण बात है। कहा जाता है कि जो लोग अधिक पाप करते है या जिनपर विश्वनाथजीकी मुक्ति सार्टिफिकेट काम नही करती, वे केदार-नाथजीके इलाकेमे जा बसते है। इनका अपना एक अलग इलाका है। यह इलाका महर्षि वेदव्यासके झमेलेके कारण बसाया गया है। कुछ लोगोने (जिनके पास दिव्यचक्षु है) मणिकर्णिका घाटपर मुर्दोंके पास शकर भगवान्‌को साक्षात्‌रूपमे उनके कानोमे कुछ कहते देखा है। लेकिन यह तयशुदा बात है कि काशीमें शंकरका ही राज्य है। यहॉके हर गली-कूॅचेमे वे विराजमान है।

उनकी नींद इतनी गहरी होती है कि उन्हे जगानेके लिए हिन्दू जनता सुबह होते ही गाल बजाते हुए 'हर हर महादेव शम्भो काशी विश्व-नाथ गंगे' के नारोंसे काशीका कोना-कोना गुलजार कर देती है।

आजकल प्रत्येक प्रान्तकी ग्रीष्मकालीन राजधानियॉ बन गयी है। मेरी समझसे लोगोने यह प्रेरणा शंकर भगवान्‌से ही ली है। शंकरकी ग्रीष्म-

कालीन राजधानी कैलास है। भक्तोका कहना है कि यहाँकी गर्मीसे घबराकर वे कैलास चले जाते है। पण्डितोका कहना है कि द्वितीय विवाहके पश्चात् उन्हे ससुरालसे अधिक मोह हो गया है, इसलिए चार माह ससुराल जाकर मौज-पानी लेते है। कुछ प्रगतिशील विचारवालोकी राय है कि अपनी द्वितीय पत्नी गगासे मिलनेके लिए जाते है। इस तर्कमे कौन कितना सही है, यह तो मै नही जानता। यदि भोले बाबा कभी किसी पत्रकारको इएटरव्यू दे तो सही बात प्रकाशमे अवश्य आ जाय।

यह निश्चित है कि जब राजा राजधानीमे नहीं रहेगा तो राज्यशासन मे कुछ गड़बडी हो ही जाती है। फलस्वरूप ये चार महीने बड़े मुश्किलसे गुजरते है। अक्सर जब वे कैलाससे जल्द वापस नही लौटना चाहते—जिसका पता यहाँ तुरन्त पानी बरसनेमे देर होते देख लग जाता है—तब भक्तोका दल गंगाका पानी घड़ेमे भरकर मन्दिरोमे लाकर छोड़ने लगता है। इतना पानी छोडा जाता है कि पानीकी वह धारा एक छोटी नदीका रूप धारण कर लेती है। शायद भक्तोकी इस हरकतकी सूचना उन्हें मिल जाती है और वे तुरत नन्दी पर सवार होकर चल देते है। ये चार महीने वे शान्तिसे बितानेकी गरजसे कैलास जाते जरूर है पर वहाँ भी उन्हे शान्ति नहीं मिलती। उन दिनों समूचे भारतके आस्तिकजनोका दल पर्वतोय भूमिको गुलजार कर देता है। इधर काशीकी जनता उन्हें अलग परेशान करती है। कैलाससे वापस आनेपर उन्हे और ही दृश्य देखनेको मिलता है। उनके भक्त-गण उनसे नाराज़ होकर दुर्गादेवी, लक्ष्मीदेवी, संकटमोचन और सारनाथके उपासक बन जाते है। यह दृश्य देखकर उन्हे कितना सदमा होता है यह तो पता नहीं, पर वे इस बातकी प्रतिज्ञा जरूर करते होगे कि आगेसे वे ससुरालमें ऐसी लम्बी नहीं ताना करेंगे। तीन-चार माह बाद कहीं भक्तोंका मिजाज़ ठीक होता है और तब पुनः पहले जैसा उनका सम्मान होने लगता है। लेकिन हर साल गर्मी आते ही उनका मिजाज खड़बडा जाता है और इधर उनके भक्त भी

कम नहीं। उन्हे अपनी उचित शिक्षा देनेका हथकण्डा ज्ञात है। अब तो दोनो ही इस बातके आदी हो गये है। किसीको किसीसे शिकायत नहीं।

काशीनरेश

भोले बाबाके जीवित संस्करण है—काशीनरेश। राह-बाट कहीं भी मुलाकात हो, आप 'हर हर महादेव' की आवाज लगाइये, वे स्वयं आपको सलाम करेंगे। काशीकी जनता अपने इस नरेशका जितना सम्मान करती है उतना किसीका नहीं। एकबार जब सारिपुत्त-महा मोद्गल्यायनकी अस्थियाँ सारनाथ आयी थी, उस समय माननीय पन्तजी से लेकर विदेशोके अनेक राजदूत, सिक्कमके राजकुमार, मंत्री और अधिकारी उपस्थित थे। काशीकी जनता उन्हे देखती रही। लेकिन ज्योंही महाराज बनारस आये और अस्थि कलश हाथमे लिया—'हर हर महादेव'के नारोसे सारा सारनाथ कॉप उठा। महाराजा साहबके पीछे-पीछे भीड़ चल पडी। अन्य महानुभावोंका वही महत्व हो गया जो लॅगड़े आमके आगे खरबूजेका हो जाता है।

काशीके नागरिक काशी नरेशके आगे बडो-बड़ोको बामुलाहिजा गरदनियॉ दे देते है। यही वजह है जब जहॉ मौका मिला 'हर हर महा-देव'के नारोसे उनका स्वागत करते है। एकबारकी बात है, कुछ गुरु लोग भॉग छानकर दुर्गाजीके मन्दिरके पास मैदानमे निपटान देने जा रहे थे। हाथमें हडिया, तनपर लंगोट और कानपर यज्ञोपवीत चढ़ा था। ठीक इसी समय महाराजा साहबकी मोटर आ गयी। ऐसी हालतमे उनसे ऑखे चुरा लेना स्वाभाविक धर्म नहीं माना जाता। गुरु लोगोंने आव देखा न ताव, हॅडिया नीचे रख दोनो हाथ उठाकर 'हर हर महादेव' की आवाज बुलन्द कर ही दी। भले ही महाराजा साहबने उन लोगोको न देखा हो, पर आदतके अनुसार हाथ उठाकर उन्होने भी अभिवादन किया। उनकी इस सतर्कतासे काशीकी जनता निहाल हो जाती है।

स्वयं महाराजा साहब भी बनारसियोसे कम मुहब्बत नहीं करते। उस पारकी सारी जमीन, दुर्गाजीका मंदिर, लंका, वेदव्यासजी की भूमि बनारसियोको नहाने-निबटने, भाँग छानने और तफरीह करनेके लिए छोड़ दी है। सालमे एकबार काफी धूमधामसे महीनोतक रामलीला करवाते है। उन दिनों बनारसकी आधी जनता गहरेबाजपर सवार होकर उसपार पहुँचती है। सालमे स्वयं एकबार महाराजा भरत-मिलाप देखने चले आते है। विश्वनाथ दर्शन या कोठीपर आराम करने भी आते-जाते रहते है। बनारसी जनतासे काशीके इस राजाका सम्पर्क बहुत दिनोंसे इस प्रकार स्थापित है और आगे रहेगा भी।

अन्य राजा

काशी नरेशके अलावा काशीमें कुछ ऐसे भी राजा हुए जो आज भी राजाके नामसे पुकारे जाते है। मसलन राजा शिवप्रसाद सितारे-हिन्द, राजा औसानसिह, राजा बलदेवदास बिड़ला और राजा मोती-चन्द। इन लोगोको ब्रिटिश सरकारकी ओरसे राजाकी उपाधियाँ प्राप्त हुई थीं और तबसे इनके नामके आगे यह शब्द जुड़ा हुआ है। इनमे राजा बलदेवदास और राजा मोतीचन्दने काशीकी जनतासे सम्पर्क स्थापित कर कुछ सेवाकार्य भी किया है। कुछ ऐसे स्मारक बनवाये है कि आगे आनेवाली पीढ़ी भी इनका यशोगान करती रहेगी।

यो काशीमें अनेक राजाओकी कोठियाँ मौजूद है और काशीके निर्माणमे लगभग सभीने भाग लिया है, पर जनता उन नरेशोको अधिक मान्यता नहीं देती। काशीवासी मौज-पानी लेनेके लिए प्रसिद्ध है। इसके लिए वे अपना सब कुछ लुटा देनेको तैयार रहते है। जो लोग इनके इस आनन्दमे शरीक होते है, वे ही इनके लिए राजाके तुल्य हैं। महाराजा कुमार विजयानगरम् इसी कोटिके राजाओंमे है। काशीकी जनता इन्हें 'राजा इजानगर' कहती है। कहा जाता है लक्साकी राम-

कम नहीं। उन्हे अपनी उचित शिक्षा देनेका हथकण्डा ज्ञात है। अब तो दोनो ही इस बातके आदी हो गये है। किसीको किसीसे शिकायत नहीं।

काशीनरेश

भोले बाबाके जीवित संस्करण है—काशीनरेश। राह-बाट कहीं भी मुलाकात हो, आप 'हर हर महादेव' की आवाज लगाइये, वे स्वय आपको सलाम करेंगे। काशीकी जनता अपने इस नरेशका जितना सम्मान करती है उतना किसीका नहीं। एकबार जब सारिपुत्त–महा मोद्गल्यायनकी अस्थियाँ सारनाथ आयी थी, उस समय माननीय पन्तजी से लेकर विदेशोंके अनेक राजदूत, सिक्कमके राजकुमार, मंत्री और अधिकारी उपस्थित थे। काशीकी जनता उन्हे देखती रही। लेकिन ज्योंही महाराज बनारस आये और अस्थि कलश हाथमे लिया—'हर हर महादेव'के नारोंसे सारा सारनाथ काँप उठा। महाराजा साहबके पीछे–पीछे भीड़ चल पडी। अन्य महानुभावोका वही महत्व हो गया जो लँगडे आमके आगे खरबूजेका हो जाता है।

काशीके नागरिक काशी नरेशके आगे बडो-बड़ोंको बामुलाहिजा गरदनियाँ दे देते है। यही वजह है जब जहाँ मौका मिला 'हर हर महादेव'के नारोंसे उनका स्वागत करते है। एकबारकी बात है, कुछ गुरु लोग भाँग छानकर दुर्गाजीके मन्दिरके पास मैदानमे निपटान देने जा रहे थे। हाथमे हडिया, तनपर लंगोट और कानपर यज्ञोपवीत चढ़ा था। ठीक इसी समय महाराजा साहबकी मोटर आ गयी। ऐसी हालतमें उनसे आँखे चुरा लेना स्वाभाविक धर्म नहीं माना जाता। गुरु लोगोंने आव देखा न ताव, हँडिया नीचे रख दोनो हाथ उठाकर 'हर हर महादेव' की आवाज बुलन्द कर ही दी। भले ही महाराजा साहबने उन लोगोंको न देखा हो, पर आदतके अनुसार हाथ उठाकर उन्होने भी अभिवादन किया। उनकी इस सतर्कतासे काशीकी जनता निहाल हो जाती है।

रुपया टैक्सकी रकम काटकर बाकी १,६०,०० हजार रुपया चाँदीके सिक्के मुझे वापस कर दीजिये। ब्रिटिश सरकारके खजानेमें इतना सिक्का नहीं था, इसलिये उसने यह प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया। यह बात अपनेमें कहाँ तक सच है, यह तो पता नहीं, पर आज भी बड़े-बूढ़े इस बातको दुहराते हैं।

कुछ लोगोका विचार है कि काशीमें रेडियो स्टेशन सरकार सिर्फ इस-लिए नहीं लगा रही है कि उसके पास पैसेकी कमी है। यदि आज बाबू शिवप्रसाद गुप्त जीवित होते तो शायद उतनी रकम सरकारको देकर रेडियो स्टेशन खुलवा देते। कहनेका मतलब आज भी काशीकी जनता-के हृदयमें इस बेताजके बादशाहके प्रति काफी इज्जत है। बनारसके हड़-तालके इतिहासमें बाबू शिवप्रसाद गुप्तके निधन दिवसपर जैसी जबर्दस्त हड़ताल हुई, वैसी महात्मा गाँधी, महामना मालवीयके निधन दिवसके अलावा अन्य किसीके निधन दिवसपर नहीं हुई थी।

बनारसके राजाओंका एक जानदार वर्ग स्वयं यहाँके अलमस्त निवासी है। सबेरेके समय गगाके घाटों तथा मन्दिरोंके आसपास अगर आप टह-लनेका कष्ट करें तो—'का राजा, नहाके आवत हउवा?' चौंककर देखेंगे तो पायेंगे, जिसे 'राजा' सम्बोधित किया गया है, वह कमरमें गावटीका भीगा गमछा लपेटे कोई फक्कड़ बनारसी होगा। 'राजा' यहाँका परम पवित्र सम्बोधन है, जिस तरह 'मिस्टर' 'महाशय' और महोदय आदि।

लीलाका प्रारम्भ स्वयं इन्होंने करवाया था। उन दिनों चार ब्राह्मणके लड़के और लड़कियाँ खोजकर प्रत्येक वर्ष राम-लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न और उनकी पत्नियोंके लिए चुने जाते थे। बाकायदा विवाह आदि समस्त कार्य रामलीलाके अन्तर्गत किया जाता था। इसके पश्चात् सम्पूर्ण लीलामें उनसे अभिनय करवाकर उन्हें छोड़ दिया जाता था। इस प्रकार प्रति वर्ष चार ब्राह्मण बच्चोंका विवाह ब्राह्मण कुमारियोंके साथ हो जाता था और उनके माता-पिता इस खर्चसे बच जाते थे।

बेताजके बादशाह

इन राजाओंके अलावा काशीमें दो अन्य राजा हैं, जिन्हें सरकारने उपाधि नहीं दी और न उनका कहीं राज्य है। बनारसकी जनताकी ओरसे उन्हें राजाकी उपाधि प्राप्त है। उनमें राजा किशोरीरमण आज भी जीवित हैं। वर्तमान समयमें लक्सा रामलीलाका भार इन्हींपर है। रामनगरकी लीलाके बाद लक्साकी रामलीलाका ही महत्व है। चूँकि काशीकी जनताका इससे अधिक मनोविनोद हो जाता है और सालमें कुछ दिनोंतक उनकी कोठीमें लोग मौज-पानी लेते हैं, बस इसी खुशी-यालीमें लोग उन्हें राजा कहकर पुकारने लगे।

काशीके दूसरे राजा है—स्व० शिवप्रसाद गुप्त। कहा जाता है जब तक वे जीवित थे, काशीकी नाक थे। कभी कोई माँगनेवाला उनके यहाँसे खाली हाथ नहीं लौटा। काशीकी गरीब जनता उन्हें दानवीर कर्ण मानती रही। बनारसके नागरिक कब क्या चाहते हैं, इसका उन्हें अनुभव था। यद्यपि उनकी देन कम है, पर उनकी महानता इस देनसे कहीं अधिक है। इनके बारेमें जनतामें अनेक कहानियाँ प्रसिद्ध हैं। कहा जाता है कि एकबार दंगेके समय जब काशीकी जनतापर छः हजार रुपये प्यूनिटी टैक्स लगा तब बाबू शिवप्रसाद गुप्तने ब्रिटिश सरकारसे कहा कि मैंने आपको २,२०,०० रुपया कर्ज दे रखा है। उसमेंसे ६०,००

रुपया टैक्सकी रकम काटकर बाकी १,६०,०० हजार रुपया चाँदीके सिक्के मुझे वापस कर दीजिये। ब्रिटिश सरकारके खजानेमें इतना सिक्का नहीं था, इसलिये उसने यह प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया। यह बात अपनेमें कहाँ तक सच है, यह तो पता नहीं, पर आज भी बड़े-बूढ़े इस बातको दुहराते हैं।

कुछ लोगोका विचार है कि काशीमें रेडियो स्टेशन सरकार सिर्फ इस-लिए नहीं लगा रही है कि उसके पास पैसेकी कमी है। यदि आज बाबू शिवप्रसाद गुप्त जीवित होते तो शायद उतनी रकम सरकारको देकर रेडियो स्टेशन खुलवा देते। कहनेका मतलब आज भी काशीकी जनता-के हृदयमें इस बेताजके बादशाहके प्रति काफी इज्जत है। बनारसके हड़-तालके इतिहासमें बाबू शिवप्रसाद गुप्तके निधन दिवसपर जैसी जबर्दस्त हड़ताल हुई, वैसी महात्मा गाँधी, महामना मालवीयके निधन दिवसके अलावा अन्य किसीके निधन दिवसपर नहीं हुई थी।

बनारसके राजाओंका एक जानदार वर्ग स्वयं यहाँके अलमस्त निवासी है। सवेरेके समय गंगाके घाटों तथा मन्दिरोंके आसपास अगर आप टह-लनेका कष्ट करें तो—'का राजा, नहाके आवत हउवा?' चौंककर देखेंगे तो पायेंगे, जिसे 'राजा' सम्बोधित किया गया है, वह कमरमें गावटीका भीगा गमछा लपेटे कोई फक्कड़ बनारसी होगा। 'राजा' यहाँका परम पवित्र सम्बोधन है, जिस तरह 'मिस्टर' 'महाशय' और महोदय आदि।

: बनारसी रईस :

हिन्दुस्तानमे नवाबोकी नगरी लखनऊ और रईसोंकी नगरी बनारस है। हॉ, अगर आप इन दोनो शहरोके वाशिन्दे न हुए तो नाराज हो सकते है। इसलिए पहले आपकी नाराजगी दूर कर दूॅ। सर्चलाइट लेकर तलाश करनेपर हिन्दुस्तानके हर गली-कूचेमें रईस और नवाब खचियो मिल जायेगे पर जो सिफ्त बनारसी रईसोमे है और जो नजाकत लखनवी नवाबोमें है, वह उनमें कभी नहीं पाइयेगा। आधुनिक युगमे करोड़पति या लखपति जाडेके दिनोमे अधिकसे अधिक दो या तीन लिहाफ ओढ़ता होगा। अगर यही बात किसी लखनवी नवाबसे पूछिये तो किस दिन कितना जाड़ा पड़ा था इसका नाप-जोख वह लिहाफोकी संख्यामें बतायेगा। है दुनियाके किसी ठण्डे मुल्कमे बसे नवाबोमे यह नजाकत ? ठीक इसी प्रकार बनारसी रईस भी भोजनमें पीसे हुए बासी मसालेकी शिकायतसे लेकर बिस्तरकी तीसरे चद्दरकी सिकुड़नका बयान दे सकता है।

रईस कौन ?

सच पूछिये तो रईस न तो किसी सॉचेमें ढाले जाते है और न किसी फैक्टरीमे बनाये जाते है। उन्हे मार पीटकर भी रईस नहीं बनाया जाता। रईस लोग अपनी प्रवृत्तियोके कारण बनते है। मेरा मतलब उन रईसोसे नहीं है जो जलपान गृह, रेस्तरा और सिनेमाके पास विचरण करते हुए अपने मित्रोंसे कह उठते है—'आओ यार, तुम भी क्या कहोगे किसी रईससे पाला पड़ा था।' याद रखियेगा, रईसी किसीकी बपौती नहीं है और न किसी जाति विशेषकी अमलदारी। रईस हर वर्गका हर व्यक्ति बन सकता है, बशर्ते उसमे नफासत हो, नजाकत हो और शराफत हो।

बनारसी रईसीका मतलब साधारण तौरपर उदारता और शाहखर्चीसे लगाया जाता है। लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि अनैतिक कार्योंमें भी शाहखर्च बननेवाला रईसकी उपाधि पा जाय। बनारसी रईस उस व्यक्तिको कहा जाता है जो व्यक्तिवादी नहीं होता और जन समारोहोंमे अपना परिचय विलक्षण मुक्तहस्तीसे देता है। लगे हाथ एक उदाहरण सुन लीजिये।

आधुनिक हिन्दी साहित्यके जन्मदाता भारतेन्दु हरिश्चन्द्रसे अधिकाश लोग परिचित है। बनारसमे अनेक साहित्यिक पैदा हुए और होते रहेगे, पर इनकी उदारताका गुणगान आजके प्रत्येक काशीवासीकी जबान पर है। इनकी रईसी देखकर एकबार काशी नरेशके मनमे भी ईर्ष्या उत्पन्न हो गयी थी। उन्होंने कहा था—'बबुआ, एत्तरे खर्चा करबा त एक दिना बाप-दादाका बिरासत डूबके रह जाई .....'

भारतेन्दुने छूटते ही जवाब दिया—'इस धनने मेरे दादाको खाया, मेरे बापको खाया और अब मुझे भी खा जाना चाहता था। इसलिए मैने सोचा लाओ मै ही इसे खा जाऊं। न रहे बॉस और न बजे बॉसुरी।'

स्मरणीय कविसम्मेलन

भारतेन्दु कितने बड़े रईस और साहित्य प्रेमी थे निम्नलिखित उदाहरणसे जाना जा सकता है—

एकबार इनके यहॉ तीन दिनों तक अखण्ड कवि सम्मेलन होता रहा। पन्द्रह-बीस हलवाई पूड़ी-तरकारी बनाते रहे। कुछ लोग भॉग घोटते रहे। बाहरी मेहमान और कवि गण खाते-पीते-सोते और कवि-सम्मेलनमें भाग लेते रहे। लेकिन सम्मेलन कुछ देरके लिए भी रुका नहीं। सारा शहर उलट पड़ा था। है कोई मा का लाल जो आजके युगमें इतने कवियोंका तीन दिनोंतक खर्चा और नखरा बर्दाश्त कर सके।

बुढ़वा मंगलके वे प्राण थे। उन दिनो बुढवा मंगलमे भाग लेनेके लिए काशी नरेश भी आया करते थे। इस उत्सवमे हजारो रुपयोके सोने-चाँदीका वर्क उड़ जाता था। साहित्यके नामपर इस महान् पुरुषने जितना त्याग किया और दान दिया है, वह आजके युगमे कभी संभव नही है।

एकबार दो तमोलियोको नशा-पानीके लिए कुछ रकमकी आवश्यकता थी। तुरत कहीं इन्तजाम हो नहीं सकता था। बस एकने कुछ तुकबन्दियाँ की और चल पड़े भारतेन्दुके यहाँ। उनके सामने जाकर जब अपनी कविता सुनायी तब उन्हे उनका वास्तविक उद्देश्य समझते देर नहीं लगी। एक दुशाला और एक अंगूठी देते हुए बोले—'कविता तुम्हारे बसकी नही है। जाकर पान लगाओ। इसके चक्करमें मत पड़ो।' आजके युगमें कौनसा ऐसा साहित्य प्रेमी या धन्नासेठ है जो तुकबन्दीके नाम पर दुशाला और अंगूठीका दान कर सकता है?

शाहखर्ची और उदारताके अलावा बनारसी रईस कुछ झक्की भी होते है। राजाओके बाद बनारसमे रईसोका दर्जा माना जाता है। कुछ मानेमे जनता राजाओसे कही अधिक सम्मानित रईसोको समझती है। जिस प्रकार राजा अपने तमाम प्रजाओका ख्याल रखता है, उसी प्रकार रईस अपने आश्रितो, अपने परिचितो तथा अपने अंचलके लोगोंका ख्याल रखते है। राजा केवल दर्शनीय होता है, अपनत्वके बाहरका व्यक्ति। लेकिन रईस अपने महफिलका आदमी होता है जिससे हर ढगसे बातचीत की जा सकती है, वह कुछ मानेमे राजाओसे महान् होता है, उसके इस महानताको कुछ लोग 'सनकीपन' समझते है।

अशर्फी सुखायी जाती थी

तीन लोकसे न्यारी काशीमे रईस लोग भी निराले ढँगके हो चुके है। काशीमे झक्कड़ साबके घरानेकी अनेक कहानियाँ बच्चोकी जबानपर

चहल-कदमी करती है। इनके बारेमे यह बात अधिक प्रसिद्ध है कि एक-बार आपको यह झक सवार हुई कि सन्दूकोमें अशर्फियाँ काफी दिनोंसे पड़ी है, इन्हे धूपमें डलवाकर सुखा लेना चाहिए। यह सनक सवार होते ही नौकरोको आदेश दिया गया कि तमाम अशर्फियॉ इकट्ठी करे। जब अशर्फियॉ इकट्ठी की गयीं तब उसके इतने ढेर लग गये कि गिननेके बजाय उन्हे तौलकर सूखनेके लिए ऊपर भेज दिया गया। दिनभर सूखनेके बाद जब पुनः तौली गयी तब उन्हे जानकर आश्चर्य हुआ कि कम क्यो नहीं हुई। फलस्वरूप नौकरोपर बुरी तरह फटकार पड़ी—सब जांगरचोर है, काम ठीकसे नहीं करते। कोई काम ठीकसे नहीं होता।

दूसरे दिन फिर वही क्रिया दुहरायी गयी। अन्तमे नौकरोने कुछ अशर्फियॉ अपनी जेबमे रख लीं। इस प्रकार जब उस दिन वजन कम हो गया तब उन्हे विश्वास हो गया कि हॉ, आज अशर्फियॉ सचमुच सुखायी गयी है।

झक्कड़ साबकी एक और कहानी इस प्रकार है—आपमे एक आदत यह थी कि शामको पान घुलाकर दो तल्लेमें बैठ जाते थे। जो व्यक्ति खूब साफ कपड़े (बुर्राक) पहनकर उनकी गलीसे गुजरता तो देख-दाख कर उसपर थूक देते थे। यह मानी हुई बात है कि आप जिसपर थूकेगे वह आपकी इस 'पुनीत-कृपा' पर मौन नहीं रह सकेगा। फलस्वरूप वह व्यक्ति नीचेसे काफी गालियॉ देता था। जिसे सुनकर वे बडे प्रसन्न होते थे। जो व्यक्ति ऐसा नहीं करता था, उसे गदाई कहकर अपने आपमें ही पेचोताब खाकर रह जाते थे। कम्बख्तने रईसीका रुआब नहीं माना।

हिन्दी साहित्यके प्रसिद्ध लेखक स्वर्गीय किशोरीलाल गोस्वामी महाराज भी यही क्रिया करते थे और झक्कड़ साबकी भॉति आप भी गाली देने-वालेको ऊपर बुलाकर माफी मॉगते और नये वस्त्र पहनाकर उसे विदाकर देते थे।

एक पैसा जुर्माना

काशीके प्रसिद्ध रईस थे—लल्लन-छक्कन। इनका इतना बड़ा तबेला (अस्तबल) है कि आज वहाँ लड़कियोंका सरकारी स्कूल खुल गया है। एकबार इन्हें अजीब सनक सवार हुई। इन्होंने अपनी बग्घीमें इतने घोड़े जुतवाए, जो कानूनके खिलाफ था। फलस्वरूप इनपर मुकदमा चला और जुर्माना हुआ। इससे चिढ़कर इन्होंने यह तय किया कि देखें सरकार कबतक कितना जुर्माना करती है। नित्य जुर्माना देते गये और नित्य एक घोड़ा बग्घीमें बढ़ता गया। अन्तमें एक दिन जजने तंग आकर इनपर एक पैसा जुर्माना किया।

जजके इस फैसलेसे चिढ़कर कि क्या मेरी हस्ती एक पैसेकी हो गयी, इन्होंने उस दिनके बादसे बग्घी पर बैठना छोड दिया।

बनारसके भीक्खूसावका नाम आजके बच्चे-बच्चेकी जबानपर है। उनकी दैनिक क्रियाओंका साहित्यमें वर्णन करना अनुचित होगा, इसलिए उनके बारेमें कुछ नहीं लिख रहा हूँ। सच पूछिये तो वे बनारसके दर्शनीय व्यक्तियोंमें एक थे।

बनारसमें रईस कितने हैं, इसका सही आँकड़ा आज भी ज्ञात नहीं हो सका, क्योंकि यहाँका प्रत्येक व्यक्ति कुछ-न-कुछ अवश्य है। मसलन यहाँके सभी ब्राह्मण गुरू, अहीर सरदार, क्षत्री ठाकुर साहब, मजदूर पेशेवाले मिस्त्री, दुकानदार साव-महाजन, यहाँ तक कि सडकपर झाड़ू लगानेवाला भी मेहतर नहीं जमादार साहब है।

समझनेको बनारसका धोबी भी अपनेको रईस समझता है। अगर उसके पीठपर कपड़ेकी गट्ठर न हो अथवा शीतला वाहनके साथ न हो तो उसे किसी कालेजका छात्र या अध्यापक समझा जा सकता है। जिन्हें बनारसी धोबियोंसे पाला पड़ा है वे इस बातको महसूस करते है।

नगरपालिका जिस दिन मेहतरोको वेतन देती है उसी दिन शामको मेहतरोका दल कलवरियामें अपनी रईसीका जो दृश्य उपस्थित करता है, वह बड़े-बड़े रईसोंके लिए इर्ष्याका विषय बना हुआ है।

साधारण तौरपर रईस लोग सुबह ८–६ बजेके पहले बिस्तर नहीं छोड़ते। प्रातःक्रिया समाप्त करनेके पश्चात् हजरतके बदनकी मालिश एक घण्टेतक होती है, फिर नहा-धोकर खा-पीकर आरामसे गाव तकियाके सहारे सटक पीते हुए आराम फरमाते है। जब दोपहरिया ढल जाती है तब मौसमी फलोका रस लेते है। इसके पश्चात् शामके समय यारोकी महफ़िल जमती है। उसमे खान-पानका दौर भी चलता है, हर रंगकी बातचीत होती है। बनारसी रईस घरसे बहुत कम बाहर निकलते है। कुछ ऐसे भी रईस है जिन्हें सड़कपर निकले तीन-चार वर्ष हो गये है। छोटे सरकार (लड़का) कारबार देखते है और बड़े सरकार घरमे रईसीका आनन्द लेते हैं।

रईसी बनारसवालोका पैदाइशी हक है। हर आदमी मौके-मौके पर अपनी रईसी प्रगट करता है। सबके अन्तमे रईसीका एक अनोखा उदाहरण दे दूँ। बिजलीके पंखे लोग स्वयं अपने उपयोगके लिए रखते है, पर सोनारपुरामे एक मिठाईकी दुकानपर टेबिल-फैनसे भट्ठी सुलगानेका काम लिया जाता है। शुद्ध रेशमी परिधानमें मुँहमे पान घुलाये भिखमंगे भी अपनी काशीमें आसानीसे मिल जायँगे, जिनका केवल ऊपरी-खर्च, किसी प्रोफेसरकी तनख्वाहसे अधिक हो बैठता है।

जमाना था, जब बनारसकी रईसीकी इज्जत होती थी, पर अब तो इत्रका फाहा बनाकर कानमे खोंसनेमें भी अड़चन होती है।

: बनारसके संन्यासी :

और मामलोंमे आप बनारसको भले ही फिसड्डी नगर कह ले, लेकिन धर्मके मामलेमें बनारसवालोका बड़ा गहरा रंग है। बनारसवाले अपनी 'विलपावर' के जरिये सम्पूर्ण भारतको धार्मिक एकतामें बाँध रखनेमें सफल हुए है। धर्मके मामलेमे यहाँकी संसदमे जो प्रस्ताव पास हुए वह सम्पूर्ण देशमें मार्शल-लाकी भाँति लागू हो गये।

भारतकी राजधानीके रूपमे कोई नगर अनादिकालसे रजिस्टर्ड नहीं रहा। इन्द्रप्रस्थ, दिल्ली दौलताबाद, आगरा, और नयी दिल्ली आदि नगरोको भारतकी राजधानी बननेकी 'टेम्परेरी रजिस्ट्री' हो चुकी है। यद्यपि बनारसने भूलकर भी यह गौरव स्वीकार नहीं किया, फिर भी वह हिन्दू धर्मका रजिस्टर्ड हेड आफिस अनादि कालसे बना हुआ है। इतिहास और धार्मिक ग्रन्थोके अध्ययनसे भी यह पता नही चलता कि आर्य धर्मके इस हेड आफिसका कभी स्थानान्तरण हुआ था। अगर कहीं कुछ परिवर्तन हुआ है तो केवल नगरके नाममें। काशी काशिका, स्वर्गपुरी, तीर्थराज्ञी, वाराणसी, बनारस, मुहम्मदाबाद, बेनारेस और अब अपने बाबू साहबकी कृपासे फिर वाराणसी।

धार्मिक महत्ता

बनारसको इतनी धार्मिक महत्ता कब, क्यों और कैसे मिली—इसका उल्लेख कहीं नहीं है, यद्यपि यह बात सही है कि भारतमें प्रचलित सभी सम्प्रदायोके जन्मदाता अपनी-अपनी थीसिस लेकर बनारस आये। यहाँ उन्हे उचित मार्क-शीट ही नहीं प्राप्त हुई, बल्कि नया धर्म चलानेका लाइसेन्स भी दिया गया। बिना यहाँसे परमिट प्राप्त किये कोई भी धर्म

भारतमै पनपा नही। 'भगवान् बुद्ध' से लेकर निरञ्जन भट्टाचार्य 'बिहारी' तककी साधना भूमि काशी रही। प्रत्येक सम्प्रदायवालोंके मठ-मन्दिर और अखाडे यहाँ है। सभी धर्माचार्य यहाँकी कसौटीपर रगड़े जा चुके है। कहनेको यहाँ तक कहा जाता है कि ईसा मसीह भी काशी आये थे।

स्कन्द पुराणके अनुसार 'त्रिलोकमे वाराणसी सर्वश्रेष्ठ तीर्थ है।' महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराजके मतानुसार 'तीर्थोंमे श्रेष्ठतम तीर्थ काशी ही है, क्योकि यह कर्मक्षेत्र नही अपितु ज्ञानका क्षेत्र है। यहाँ कर्म बीज बपन नही किया जाता, पर ज्ञान बीज बपन किया जाता है। इस दृष्टिसे समग्र काशीको गुरुधाम कहा जा सकता है।'

यहाँ तक तो हम मान लेते है कि काशी अत्यन्त पवित्र नगरी है। जिसकी चर्चा वेदसे लेकर बौद्ध दर्शन तक और उपनिषद्से लेकर उपन्यासो तकमे हो चुकी है। लेकिन एकबात साफ नहीं होती कि इससे धर्मका क्या सम्बन्ध है ?

बहुत संभव है आर्योंमे जब वर्ण व्यवस्था प्रारम्भ हुई तब ब्राह्मण वर्गके व्यक्ति अपना 'रिटायर्ड' काल 'निछद्दम' मे बितानेके लिए यहाँ चले आये। उन दिनो काशीमें भयंकर जंगल था। (विश्वास न हो तो ईस्ट इण्डिया कालमे बने बनारस जिलेका नक्शा देखे) मौज-पानीका दिव्य प्रबन्ध था। गुरू बनाम ब्राह्मण लोग यहाँ चले आये। उन्हे भरपेट भोजनके अलावा कुछ नही चाहिए था। इस प्रकार जब अधिकांश गुरू लोग यहाँ चले आये तब सार्थमे बच्चोको शिक्षा देनेवाला कोई नहीं रह गया। इसीलिए उन दिनो लोग अपने बच्चोको शिक्षाके लिए यहाँ भेजने लगे। गुरुओको और कुछ काम था नही, खाना, निपटना और छात्रोको ठोक पीटकर पढ़ाना जीवनका लक्ष्य बन गया। खाली समयमे अपने स्वार्थके लिए उन्होने जो नियम बनाये—वही धर्म बन गया। इस प्रकार एक ढेलेमे दो शिकार हो गये, अर्थात् धर्मका प्रचार भी हुआ और काशी सम्पूर्ण भारतके लिए शिक्षालय भी बन गया। यही वजह है कि धर्म

और शास्त्रार्थके मामलेमें काशीकी ख्याति आज भी है। आज भी ब्राह्मणो का यहाँ आधिपत्य है। भले ही आप उनकी अवज्ञा करें, पर वे जानते है कि जन्म, विवाह और मृत्युके समय आप उन्हे अपने यहाँ अवश्य बुलायेंगे, भले ही आपकी पैदाइश रूसमें हुई हो या आप घोर नास्तिक हो। बिना उनके सहयोगके आप नरकगामी बनेंगे।

संन्यासियोंकी पहली पलटन

हिन्दू धर्ममे ऋषि-मुनियोकी बडी महत्ता है। अधिकतर ऋषि-मुनि ब्राह्मण ही होते थे। ब्राह्मणोको ही शिक्षा-दीक्षा दी जाती थी। गैर ब्राह्मणो-को पास फटकने नहीं दिया जाता था। नतीजा यह हुआ कि नाऊ-धोबी बनारस नहीं आ सके। गुरुओंकी दाढी, जटा बढ़ने लगी, कपड़े चीथड़े हो गये, उनका एक अजीब रूप हो गया। आगे चलकर ये ही लोग ऋषि-मुनि कहलाने लगे। यहाँ यह स्मरण रखना होगा कि हमारे ऋषि-मुनि पण्डित थे और विवाहित होते थे। ऐरे-गैरेको चेला बनाकर अपनी इज्जत अपने हाथसे नही गँवाते थे। गृहस्थोंके लिए सर्वदा मंगल-कामना करते थे। उनदिनो खाने-पीनेकी कमी रही नहीं, मार्क्सवाद-पूँजीवादका झगडा नही था, डालरवाद-स्टर्लिंगवादकी समस्या नहीं थी, नाटो-सीटो पैक्ट नही थे और न परमाणु और हाइड्रोजन बमका भय था। फलस्वरूप जिन लोगोंको बुद्धिकी अपचकी बीमारी हो जाती थी, वे लोग जंगलमे भाग जाते थे और तप करने बैठ जाते थे। जब उनकी दाढ़ी और जटा बढ़ जाती थी तब तपके आधारपर उन्हे ऋषि-मुनिकी उपाधि दे दी जाती थी। ऐसे लोग जंगलमे रहते थे। बस्तीमे आनेके लिए दफा १४४ लागू रही, क्योकि नगे-अधनगे रहते थे। शहरमे कभी-कभी नमक-गुड माँगने चले आते थे। कन्द-मूलको अपना राशन समझते थे। मठ-मन्दिरके पचड़ेमे नहीं पड़े। अपनी हजामत कभी नहीं बनाते थे और न स्वार्थके लिए दूसरेकी बनाते थे। खाने-पीने और रहनेके मामलेमें अपना 'स्टैण्डर्ड'

कभी गृहस्थोंसे 'हाई' नहीं किया। इसीलिए वे पूज्य रहे, श्रद्धेय रहे। उनमे वरदान देनेकी, शाप देनेकी और भस्म कर देनेकी शक्ति रहती थी।

बौद्ध संन्यासी

ऋषि-मुनियोकी परम्परा कबतक भारतमे प्रचलित रही, यह आज भी अज्ञात है। इसके बाद अचानक भगवान् बुद्धका नाम आता है। ऋषि-मुनियोके साधारण संस्करण संन्यासियोके प्रथम जन्मदाता सिद्धार्थ थे। बौद्ध धर्मकी उत्पत्तिके पूर्व उन्हे कौन जानता? बोधि वृक्षके नीचे जब उन्हें ज्ञानकी उपलब्धि हुई तब वे सीधे बनारस चले आये। वे इस बातको अच्छी तरह जानते थे कि आज भी बनारसमे अच्छे-अच्छे तपस्वी और धर्माचार्य रहते है, जबतक उनसे मान्यता नहीं मिलेगी और बनारसवालो पर रोब गालिब नही होगा, तब तक मुझे सफलता नहीं मिलेगी। अगर बनारसवालोकी उपेक्षा कर गया तो मेरे सम्प्रदायकी 'हत्यात्मक' आलोचना ही नही होगी, बल्कि इसे उलट भी दिया जायगा। इस बातको उन्होने स्वयं आजीवकके सामने स्वीकार किया है।

वाराणसी गमिष्यामि गत्वा वै काशिकां पुरीं।
धर्मचक्र प्रवर्तिष्ये लोकेस्व प्रतिवर्तितम्॥

बनारस आकर वे शहरके बाहर सारनाथमे ही ठहर गये। भीतर जानेकी हिम्मत नहीं हुई। उन दिनो भी सारनाथ शहरका बाहरी अंचल माना जाता था। कौण्डिन्य आदि पॉच भिक्षु वहॉ तप कर रहे थे। सबसे पहले उन्होंने इन पॉचोको अपना चेला बनाया। महाबग्गके अनुसार इस समय समग्र पृथ्वीपर केवल छः धर्मात्मा थे।' इसके बाद वे अन्य लोगोकी तलाशमे रहने लगे। उन्हीं दिनोकी बात है कि नगर सेठका पुत्र मानसिक अशान्तिसे परेशान होकर एक दिन सारनाथकी ओर जा रहा था। एकाएक एक पेडकी आड़से भगवान् बुद्ध बाहर निकल आये और उसके

सामने पड गये । यश उन्हें देखकर घबरा गया । बुद्धने कहा—'मै बुद्ध हूँ, तुम आकर बैठो, मै तुम्हे उपदेश दूँगा ।' इसके बाद वे तबतक उसे अपने पास रोके रहे जबतक यशको खोजते हुए उसके मा-बाप नहीं आ गये । उन सबसे जमकर बमचख हुई तब कहीं जाकर वे परास्त हुए । लाचारीमें बेटाके साथ-साथ पूरे परिवारने प्रवज्या ग्रहण कर ली । इस प्रकार बौद्ध धर्मकी पहली पलटन सारनाथमे बन गयी । भगवान् बुद्धके चेलेके चेले और उनके चेलोने इतना 'उपद्रव-अनाचार' किया कि उसका वर्णन लाखो पृष्ठोमें लिखा गया । इतिहास इसके लिए बौद्ध धर्मका अहसानमन्द है कि उनके इस कार्योंके कारण तत्कालीन भारतीय समाजकी अवस्थाका पूरा-पूरा चित्रण हुआ है । अगर ये उपद्रव न करते तो संभवतः हमे अतीतका इतिहास ज्ञात न होता ।

भारतमे ही नहीं, बल्कि सम्पूर्ण एशियामें बौद्धोंकी अच्छी खासी पलटन तैयार हो गयी । हीनयान-महायानसे तंत्रशास्त्रके ज्ञाताओंकी पलटन बन गयी । चूँकि बौद्ध धर्मका प्रसार और उत्पत्ति सारनाथसे हुई थी, इसलिए अशोकसे लेकर कनिष्कतक तथा उसके बाद पालसेन राजाओने भी वाहवाही लूटनेकी गरजसे ढेरों स्तूप, हजारो खभे, सैकड़ो मन्दिर और दर्जनों बिहार बनवा दिये, जिसमे बौद्ध संन्यासियोका स्थायी डेरा जम गया था । इस फजूल खर्चीकी कठोर आलोचना चीनके तत्कालीन प्रसिद्ध अर्थशास्त्री (?) फाइयान, वित्तमंत्री (?) ह्वेनच्याग और एग्रीकल्चर डिपार्टमेण्टके प्रोफेसर (?) इत्सिंग तक कर गये है ।

महा पण्डित राहुलजीके शब्दोमे बौद्ध भिक्षुओंका बयान सुन लीजिये—

'बाहरसे भिक्षुके वस्त्र पहने रहनेपर भी भीतरसे वे गुह्य समाजी थे । वज्रयानके विद्वान् प्रतिभाशाली कवि चौरासी सिद्ध विलक्षण प्रकारसे कहा करते थे । कोई पनही या जूता बनाया करता था, उसे पनहीपा कहते थे । कोई कम्बल ओढ़े रहता था, उसे कमरीपा कहते थे । कोई डमरू रखनेसे

डमरूपा कहा जाता था। कोई ओखल रखनेसे ओखरीपा। ये लोग मदिरामे मत्त, कपाल चषक लिए रहा करते थे। खुल्लमखुल्ला मदिरा और नारियोका उपयोग करते थे। राजा इन्हे अपनी कन्याएँ प्रदान करते थे। इन पॉच शताब्दियोंमें धीरे-धीरे एक प्रकारसे सारी भारतीय जनता इनके चक्करमे पड़कर काम-व्यसनी, मद्यप और मूढ़ विश्वासी बन गयी।'

आचार्य शंकरकी पलटन

भगवान् बुद्धके पश्चात् संन्यासियोकी सबसे बड़ी पलटनके निर्माता थे—आचार्य शंकर। पता नहीं उन्हे क्या सूझी कि ६५६ ई० में केरलसे लपके हुए काशी चले आये। अपनी थीसिसकी गलती सुधारनेके मूडमे एक दिन घाटपर 'गंजिंग' कर रहे थे कि एक चाण्डालको न जाने क्या सूझी कि उसने आचार्यको ब्रह्मज्ञानका तिकड़म बता दिया। सिर्फ यही नहीं, यहाँ सीख पढ़कर गये, कुमारिल भट्टसे भी इन्होंने ज्ञान प्राप्त कर लिया। अगर इन लोगोको यह ज्ञात होता कि मेरी इस गलतीके कारण बनारस-वालोंकी नीद हराम हो जायगी, भविष्यमें इनके चेलोसे बचकर रहना पड़ेगा तो शायद वह ऐसी गलती न करते।

बौद्ध धर्मका मजा गृहस्थ लोग देख चुके थे। इसलिए इसबार इस धर्म-को गृहस्थोंने नहीं अपनाया। गृहस्थोका असहयोग देखकर इस धर्ममें एक कानून यह बनाया गया कि इस धर्मके अनुयायी गृहस्थोके मध्य जाकर उन्हें प्रवचन देगे, उनके कान फूकेंगे और वक्त जरूरतपर मूड़ते रहेंगे। इस कानूनसे लाभान्वित होनेके लिए बहुतसे अवसरवादी, वेकार और बे-रोजगार लोग भी इस पार्टीमे भर्ती हो गये। आचार्यकी कृपासे हिन्दुस्तान-के चार कोनेमें चार अड्डे बनाये गये और वहाँसे इस तरह प्रयत्न किये गये कि बौद्ध धर्मका दबदबा घटने लगा।

अपना प्रभाव बढ़ते देख प्रचारकोने एक नया सुझाव रखा—दाढ़ी-जटाका झंझट हटा दिया जाय। एक तो इसमें चीलर–खटमल अपना महल

भारतको राहत मिले

भारतमें भरतीके इन संन्यासियोने मठ-मन्दिर और अखाड़े इतने वेशुमार बनाये है कि यदि उन्हे किराये पर उठा दिया जाय तो नागरिकोकी गृह समस्या हल हो जाय। उनसे प्रवचन सुननेकी जगह उन्हे नहर-बॉध अथवा पंचवर्षीय योजनाके अन्य कार्योमे लगा दिया जाय तो वित्त मन्त्रीकी हर साल टैक्स बढ़ानेकी आदत छूट सकती है। अगर इनसे खेती करवायी जाय तो हमे विदेशोसे अन्न न मॅगाना पड़े। अगर इनसे सेवाकार्य लिया जाय तो भारतीय नागरिकोका स्वास्थ्य स्तर ऊँचा हो जाय, डाक्टरोंकी लम्बी फीससे राहत मिले। और इन सबके साथ बनारसके सरपर सही-गलत तरीकेसे लगाया जानेवाला कलंकका टीका हमेशाके लिए धुल जाय।

अगर ये लोग चेला बनाकर ही सन्तुष्ट होते तो ठीक था। लेकिन चेलाओके साथ चेलियोकी भी अच्छी खासी पलटन तैयार है। इनका जमावडा भण्डारेमें देखनेमे आता है। आश्चर्य है कि परिवार नियोजन के इस युगमे संन्यासियोकी इतनी बड़ी सख्या रहते हुए भी भारतकी जन-संख्या बढ़ती ही जा रही है।

आजका संन्यास धर्म इतना सस्ता हो गया है कि स्कूल-कालेजके बच्चे, जो गरीब है और फैन्सी ड्रेस प्रतियोगितामे भाग लेना चाहते है, वे अधिकतर संन्यासी बनते है।

: बनारसी गुरू :

देशके विभिन्न भागोमे लोग एक दूसरेको पुकारते समय मिस्टर, मोशाय (महाशय), स्वामी, श्रीमान्, जनाब, हुजूर, सरदारजी और सरकार आदि सम्बोधनों का प्रयोग करते है। चूंकि बनारसमे हर प्रान्त के निवासी रहते हैं इसलिए ये सभी सम्बोधन शब्द यदा-कदा सुनाई पड़ते है। लेकिन इन सम्बोधनोके अलावा कुछ विशेष सम्बोधन यहाँ अधिक प्रचलित है जो बनारसियोके लिए परम प्रिय है ही—उनके बिलकुल अपने है खालिस बनारसी ! 'राजा', 'मालिक', 'सरदार', और 'गुरू' ये ऐसे सम्बोधन हैं जो बनारसके सिवाय अन्यत्र सुनाई नहीं देंगे। सच पूछिए तो इन सम्बोधनोमें जो रस है, वह प्रान्तीयता–जातीयतावादी सम्बोधनोमे दुर्लभ है। इसके अलावा एक और सम्बोधन है—'का हो !' इस संबोधनका प्रयोग तभी होता है जब आगे जाने वाला व्यक्ति परिचित है या नहीं, यह भ्रम उत्पन्न हो जाय। इस सम्बोधन को सुनते ही प्रत्येक बनारसी एकबार पीछे मुडकर पुकारनेवालेको देखेगा। परिचित हुआ तो कोई बात नहीं, वर्ना अपनी राह चल देगा। 'राजा' और 'मालिक' सम्बोधन हर वर्गके व्यक्ति अपने समवयस्कोंके लिए प्रयोग करते है। कुछ ऐसे भी लोग है जिनकी 'सभ्यता' से जरा घनिष्ठ सम्बन्ध है, उन्हे ऐसे सम्बोधन अरुचिकर और भोंडे लगते है। लेकिन सच्चा बनारसी इन सम्बोधनोंपर कुर्बान हो जाता है। उसके लिए मिस्टर, जनाबसे कहीं अधिक अपनत्व और रसपूर्ण ये सब सम्बोधन है। उदाहरणके लिए 'सरदार' सम्बोधन को ही लीजिए। यह सम्बोधन यहाँके अहीरोके लिए रिजर्व है। यदि कल्लू अहीरको मिस्टर कल्लूराम या जनाब कल्लूप्रसाद कहें तो एक बारगी आपको सरसे पैर तक इस तरह देखेगा, मानो आपने भारी

बदतमीज़ी की है। उसकी शानमे बट्टा लगा रहे है। ठीक इसी प्रकार 'गुरू' सम्बोधन यहाँके ब्राह्मणोके लिए रिजर्व है। चाहे वह पौसरे पर बैठकर पानी पिलानेवाला हो या पानका दूकानदार, कथावाचक हो या वेदपाठी, सभी 'गुरू' है। अगर किसी 'गुरू' को आपने मिस्टर पाण्डेय या, बाबू शुक्ल जी सम्बोधित कर दिया तो उसे लगेगा, जैसे आपने उसे बीच बाजार में झापड लगा दिया हो। संभव है आपके नमस्कार करने पर आशीर्वाद देना तो दूर रहा, वह रुख भी न मिलाये। लेकिन उसी जगह यदि आप 'पालागी गुरू' कहिए तो वे तुरन्त शहद की तरह मीठे हो जायँगे और महात्मा बुद्धकी भाति मुद्रा बनाकर आशीर्वाद देते कह उठेंगे—'मस्त रहऽ बाट तऽ मजे मे ?''

बनारसमें गुरुओका वहुत बडा वर्ग है। हर मेलके, हर टाइपके गुरू यहाँ है। इनमे कौन छोटा है, कौन बडा है—इसका निर्णय करना कठिन है। कौन कितना महान् है, किसमे कितनी प्रतिभा छिपी हुई है—यह उतना ही गूढ विषय है जितना आजकी नयी कवितामे भाव।

गुरू के अनेक रूप

साधारणतः गुरू शब्दसे जो तात्पर्य समझमे आता है उसके कई रूप है। आजसे नही, मनु महाराजके युगसे गुरू उस व्यक्तिको कहा जाता है जो विद्यादान देता है। प्राचीन कालमें गुरू लोग छात्रोको विद्यादान देते थे, कुल-पुरोहितका कार्य करते थे और राजकार्यमे सहायता करते थे। जिस प्रकार आजकल गैर-सरकारी सस्थाओमे क्लर्कोंके जिम्मे काफी काम लदे रहते है, उसी प्रकार प्राचीन कालमें गुरुओके जिम्मे देश–समाजके अनेक कार्य लदे रहते थे। इसीलिए उनका प्रभाव वहुत व्यापक होता था। वे खिजलाकर कभी राजकुमारोंको चपत लगा दिया करते थे। कभी ज्ञान-दण्डसे, कुण्ठित बुद्धि वाले छात्रोकी बुद्धि को कोचते थे। पानी भरवाना, खेत जोतवाना, पैर दबवाना और जगलसे काटकर लकडी मंगवाना

तो साधारण बात थी। आजकल विद्यादान करने वाले गुरू जरा कुछ ऊपर उठ गये है। अब वे प्रोफेसर और मास्टर साहब हो गये है। इसलिए उनका प्रभाव घट गया है, या उन्हे यह सुविधा प्राप्त नही है।

कुल-पुरोहित तथा कथावाचकोंका एक अलग दल बन गया है। हवन-यज्ञ तो होते ही नहीं, क्योकि आजकल भारतीय इतना खाने लगे है कि विदेशो से अन्न मंगाना पड़ रहा है। शुद्ध घी तो आँखोमें लगानेको नही मिलता। डालडा तक ढाई रुपयेका सेर भर मिलता है। फिर कौन यज्ञ-हवन करे।

धनुषबाणके युगमे छात्रोंको अश्वत्थ और वट वृक्षके नीचे शिक्षा दी जाती थी। लेकिन एटमके युगमे वह युनिवर्सिटी, कालेज और स्कूलोमे दी जाने लगी है। ऐसे गुरुओंके बनारसमें दो वर्ग है। एक वे जो सरकारी सस्थाओंमे पढ़ाते है, दूसरे वे जो अपने घरोमे मृतभाषा (सस्कृत) पढ़ाते हैं। घरमे पढ़नेवाले छात्र सयमी होते है, वे अपने गुरुओका आदर करते है, भले ही वह अभिनय हो। अन्य गुरुओका खासकर जो प्रश्नपत्रपर नम्बर देते है उनकी जान खतरेमे रहती है। इसीलिए आजकल बीमा कम्पनियोकी गोटी लाल हो रही है। घरपर पढ़नेवाले छात्रोको सरकारी नौकरी नही मिलती, केवल कथा वाचना, विवाह अनुष्ठान आदि करना, तीर्थ-पुरोहित बनकर सकल्प लेना और पोथी-पत्रा देखकर जीवनका भविष्य बताना इनका मुख्य पेशा है।

कलाकार गुरू

गुरुओका दूसरा वर्ग है जिन्हे कलाकार कहा जाता है। वे अपने चेलोंको हुनर सिखाते है। इन्हे गुरू या उस्ताद कहा जाता है। ये गुरू अपने चेलोको चित्रकला सिखाये या चौर्यकला! दस्तकारी सिखायें या हाथ की सफाई। सभी 'कला' की श्रेणीमे आ जाते हैं। चूंकि ऐसे

गुरुओमे सभी वर्गके लोग उस्ताद या गुरू बन जाते है, इसलिए इन्हे राष्ट्रीय गुरू कहा जाता है।

तीसरे किस्मके गुरू जरा रजिस्टर्ड किस्मके होते है, जिनका आम पेशा है—कानमे मंत्र फूँककर चेला-चेलियोंकी फौज तैयार करना। ये गुरु पूर्णिमाके दिन पाद-पूजा करवाकर सालभरका राशन एकत्रित करते है। कभी सत्संगके नामपर तो कभी वर्षा-वासके नाम पर चेला-चेलियोके यहाँ अड्डा जमाकर उन्हे कृतार्थ करते है। इनमे कुछ गुरू ऐसे भी है जो धर्मशाला, पाठशाला और औषधालयके निर्माणके नाम पर 'टूर' करते रहते है।

लेकिन सच पूछिये तो बनारसी गुरू जरा अलग किस्मके होते है। वे इन सब हथकण्डोसे दूर रहते है। उन्हे अपना सम्मान सबसे अधिक प्रिय होता है। आज भी बनारसमे ऐसे गुरुओकी संख्या कम नही है जो दूसरोके यहाँ भोजन नही करते, मृतक भोजमे सम्मिलित नही होते और साधारण दान नहीं लेते।

प्राचीन कालमे गुरु और सरदार दोनो ही बनारसकी नाक समझे जाते थे। आनेवाले हर बाहरी संकटोमे मुकाबला करना ही इनके जीवनका मुख्य ध्येय था। नेतृत्वका सारा भार गुरुओ पर था। उनके एक इशारे पर जानपर खेल जानेवाले अनेक सरदार होते थे। खाली समयमे गुरु लोग छात्रोको पढ़ानेके बाद अखाड़ोमे पट्ठोको तैयार करते थे। उन्हे युद्ध-कौशल सिखाया करते थे। लाठी, गडासा, बल्लम और तलवार आदि अस्त्रोका चलाना तथा युद्धमे व्यूह रचना सिखाया करते थे। देश-समाजमे अमन-चैन कैसे रखा जाय इसकी नीति बताया करते थे। जो गुरु जितना प्रभावशाली होता था उसके पीछे उतने ही पट्ठे 'सेंगरी' लिए चला करते थे। इन्हे सामनेसे आते देख बडो-बड़ोंकी धोती ढीली हो जाती थी। लोगोंकी निगाहें गुरूके कदमोको चूमा करती थीं। अपनी शक्तिपर घमण्ड करनेवाले बडे-बड़े 'बारहा' भी गुरूके आगे भीगी बिल्ली बन जाते

थे। अर्थलोभ के कारण उन्होंने न तो कभी अन्याय-अत्याचारको प्रोत्साहन दिया और न किसी गरीब-बेकसको सताया। किसीमे इतनी हिम्मत नहीं थी कि यह घर या बाहर किसी प्रकारका अनाचार करे। गुरूके एक इशारेपर किसीके धड़से सर अलग हो जाना मामूली बात थी। आज वह युग नहीं रहा। न्याय करने और दण्ड देनेका अधिकार सरकारके हाथोमे है। फिर भी उस परम्पराको जीवित रखनेके लिए नागपचमीके दिन अखाडोमे दंगल और होलीके दिन मीरघाटपर धर्मयुद्धका नाटक खेला जाता है। निर्जला एकादशीके दिन उसपार कबड्डीमे कुछ लोग हाथ-पैर तोड़वा आते है।

बनारसमे गुरू कहलानेका एकमात्र अधिकार ब्राह्मणोको है। चाहे वह किसी वर्गका ब्राह्मण क्यों न हो। जिस प्रकार दफ्तरोंमे बड़े बाबू अपने सहकारियोसे इस बातकी आशा करते है कि उन्हे देखते ही लोग एक किनारेसे ही उन्हे नमस्कार करने लगेगे और कुर्सी छोड़कर खड़े हो जायेंगे, ठीक उसी प्रकार बनारसी गुरू भी सभी परिचित यजमानोसे 'पालागी गुरू' का काक्षी होता है। यह उनका जातीय हक है। आज भी बनारसमे कई ऐसे गुरू हैं जिनसे गाली सुनने और तिथि तारीख आदि जाननेकी गरजसे कुछ लोग उन्हें नमस्कार करते है।

गुरुओं की महत्ता

कौन गुरू कितना महान् है, इसकी साधारण जानकारी आप सिर्फ दो बातोसे कर सकते है। भोजन और भाँग। जो गुरु जितना डटकर भोजन करता है, उसी अनुपातमे वह भॉग छानता है। भोजनके लिए चौचक प्रबन्ध भले ही न हो पर भाँगके लिए जरूर चाहिए। फिर जब गुरू भॉग छान लेते है तब इस तरह वे भोजन करने लगते है, मानो अब एक हफ्ते तक उन्हें भोजन नहीं करना है।

साधारणतः गुरू लोग सफेद धोती, एक चद्दर और एक लाल गमछा

कन्धेपर डाले बनारसकी गलियोमे चलते-फिरते दिखाई देते है। मस्तकपर चन्दनका तिलक, गलेमे लहराता हुआ यज्ञोपवीत, हाथमें पूजनसामग्री अथवा पोथी-पत्रा लिए रहते है। कुछ गुरू लोग 'सेगरी' (तेल पीकर लाल बनी लाठी) लेकर भी चलते हैं। इनकी चालमें जितनी मजबूती रहती है, उतनी ही मस्ती भी। चप्पल या बूट पहनना वे पसन्द नही करते। कपड़े वाला जूता या चमरौधा जिसमे नाल जड़े हो—वे अधिक पसन्द करते है। विशाल काया, जिसे देखते ही बच्चे सहम जाते है, मटकेकी भाँति तोंद, जो न जाने कितना आसव अरिष्ट और पकवान खाकर फूलती है, भव्य मुखपर छोटी-घनीं मूँछे और विजयाके मदमें डूबी लाल आँखे देखते ही लोगोंका माथा श्रद्धासे झुक जाता है, जैसे आती हुई गाडीको देखकर सिगनल झुक जाती है। जाडा हो या बरसात, पर गुरू लोग कोट-पतलून पहनना पसन्द नहीं करते। नगे बदन रहना, थोडेमे सन्तुष्ट हो जाना उनकी सबसे बड़ी विशेषता है। याद रखिये यह युग प्रचारका है। विज्ञापनके जरिये आज बहुत-सी वस्तुओंका उपयोग कैसे किया जाता है—हमने सीखा है। ठीक उसी प्रकार पोशाक-आकृति या टीम-टामसे आप बनारसी गुरुओंको पहचाननेमे गलती न कर बैठे। जिस ब्राह्मणको आप कोरा ब्राहाण समझ रहे हो, मुमकिन है कि वह कई विषयोंका आचार्य हो। इसके विरुद्ध तेजस्वी लगनेवाले ब्राहाण अगूठा लगाकर हस्ताक्षर करते हों। यद्यपि ये दोनो प्रकृतिवाले यहाँ गुरू माने जाते हैं और दोनो ही पूज्य है, लेकिन यजमानोंमें श्रद्धा अलग-अलग किस्मसे उत्पन्न होती है। जो गुरू जितना महान् होगा वह उतना ही 'अजगर प्रवृत्ति' का होगा। ऐसे गुरू अपनी सारी प्रतिभा अपने साथ लिए चले जाते है। इन्हें न तो मौका दिया जाता है और न लोग इनकी विद्वत्ता ही जान पाते है। नतीजा यह होता है कि उचित सम्मान न पानेके कारण वे स्वाभिमानी बन जाते है और धीरे-धीरे यह स्वाभिमान हटका रूप धारण कर लेता है।

इसके विरुद्ध रंग गॉठनेवाले या महापण्डित लगनेवाले पण्डित समाजमे आदरणीय बने रहते है। सच पूछिए तो ऐसे गुरु सिर्फ कमाने-खानेवाले होते है। इनकी महत्ता विशेष नही होती। लेकिन विद्वान् गुरुओसे कही अधिक इनका रंग रहता है।

विद्वान् पण्डित कभी रग गॉठनेका प्रयत्न नही करता। वह बहुत ही भोला-भाला सीधा-सादा प्रकृतिका होता है।

पंडित समाज

बनारसमें गुरुओंकी एक जमात है जिसे 'पण्डित समाज' कहा जाता है। गुरुओं का असली रूप इस समाजमे देखनेको मिलता है। जब दो गुरु संस्कृतमे झाव-झाव करने लगते है तब एक अजीब नजारा देखनेमें आता है, लगता है अब शीघ्र ही मल्ल युद्ध देखनेको मिलेगा। सभापति और अन्य पण्डित मौन मजा लेते रहते है। आखिर जब एक पण्डित थक जाता है तब दूसरा उससे वाक्-युद्ध करनेके लिए उठ खड़ा होता है, फिर प्रत्येक गुरू कछुएकी तरह गर्दन बढ़ाकर इस तरह लड़ने लगता है, मानो भीषण मारपीटकी नौबत आ गयी हो। इस प्रकार बनारसी गुरुओ को गुरुआई प्रकट होती है। इन गुरुओकी साख सिर्फ बनारसमें ही नहीं, समूचे भारतमे है। जिस बातको ये अस्वीकार कर दें, उसकी मान्यता भारतमें हो ही नहीं सकती। भारतके महामान्य राष्ट्रपति डाक्टर राजेन्द्रप्रसादने भी इन गुरुओंका सम्मान पैर धोकर किया है।

इन गुरुओंकी जमात बुलाना साधारण बात नहीं। बहुत सोच-समझ कर और आवश्यकताको समझते हुए ये लोग एकत्रित होते है। ये सिर्फ देश-समाज व आसन्न संकटका फैसला करनेके लिए एकत्रित होते हैं। इनका फैसला अटल होता है। इनके आनेकी एक लम्बी फीस बुलाने वालोंको चुकानी पड़ती है। आजसे नहीं, बहुत दिनोसे इनकी एक फीस निश्चित है—उस पर मंहगाई, अलाउन्स या बोनसका रंग नहीं चढ़ा है।

और न डाक्टरोकी भाति सीनियारटी–जूनियारटीके हिसाबसे इनकी फीस घटती-बढ़ती है। हमेशा एक रेट। जिस वक्त ये लाउड स्पीकरके सामने खडे होकर भाषण देने लगते है, लाउडस्पीकरका दिवाला पिट जाता है। बिना लाउडस्पीकरके ही ये हजार-दो हजार की भीड़मे गरजते रहते है।

गुरु पूर्णिमाके दिन गुरुओंका बढ़ा रंग रहता है। उस दिन बनारसके हर गुरू पूजे जाते है।

अत्युक्तिका दोष न दे तो मुझे यह कहनेमे संकोच नहीं कि हर बनारसी अपनेको 'गुरु' समझता है।

: बनारसके कलाकार :

काशी जितनी महान् नगरी है, उतने ही महान् यहाँ के कलाकार है। जिस नगरीके बादशाह (शिव) स्वयं नटराज (कलागुरु) हो, उस नगरी मे कलाकार और कला पारखियोकी बहुलता कैसे न हो ? बनारसका लॅगड़ा इण्डियामे 'सरनाम' (प्रसिद्ध) है, ठीक उसी प्रकार बनारसका प्रत्येक कलाकार अपने क्षेत्रमे 'सरनाम' है। बनारसमें यदि कलाकारोकी मर्दुम-शुमारीकी जाय तो हर दस व्यक्ति पीछे कोई न कोई एक संगीतज्ञ, आलोचक, कवि, सम्पादक, कथाकार, मूर्त्तिकार, उपन्यासकार, नाट्यकार और नृत्यकार अवश्य मिलेगा। पत्रकार तो खचियो भरे पड़े है। कहनेका मतलब यह कि यहाँका प्रत्येक व्यक्ति कोई न कोई 'कार' है, बेकार भी अपनी मस्तीकी दुनियाका शासक-सरकार है।

काशी ही एक ऐसी नगरी है जहाँ प्रत्येक गली-कूँचेमे कितने महान् और अन्तरराष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त कलाकार बिखरे पड़े है। सब एकसे एक दिग्गज और विद्वान् है। इनका पूर्ण परिचय समाचार पत्रो, मकानोंमे लगे 'नेमप्लेटो' और लेटरपैडपर छपी उपाधियोसे ज्ञात होता है।

संगीतज्ञ

अब आप ही बताइये भारतको बिसमिल्ला खाँ जैसे अन्तरराष्ट्रीय ख्यातिका कलाकार किसने दिया ? भारत प्रसिद्ध सितारिया मुश्ताकअलीखाँ को किसने जन्म दिया ? किसी जमानेमे माने जानेवाले 'ठुमरीके बादशाह' जगदीपजीको किसने बढ़ावा दिया ? भारत प्रसिद्ध तबला वादक कण्ठे महाराज (जिनके हाथोंको उस्ताद फैयाज अली खाँने चूम लिया था) जैसे कलाकारको किसने पनपाया ?

श्री मनोरञ्जन काञ्जिलाल काशीके श्रेष्ठ चित्रकारोमें है। आपकी प्रतिभा बहुमुखी है। इधर आपकी ख्याति कार्टूनोंके सम्बन्धमें विदेशोंमे पहुँच-पैठ करने लगी है।

टैगोर शैलीके कलाकारोंमें शारदा उकील और रणदा उकीलको नहीं भुलाया जा सकता। श्रीनन्दलाल वसुके दो शिष्य श्रीशान्तिवसु और मन्मथदास काशीके श्रेष्ठ कलाकारोंमे है।

काशी शैलीके प्रवर्त्तकोंमे श्रीरामचन्द्र शुक्ल तथा महेन्द्रनाथ सिंह उल्लेखनीय है। शुक्लजी चित्रकारसे अधिक चित्रकलाके पारखी और लेखक है।

काशीके उभरते हुए कलाकारोंमें श्रीगोपेश्वर, मधुर, शिवराज, इब्राहिम 'भारती' विभूति और विश्वम्भरनाथ त्रिपाठी आदि प्रमुख है।

मूर्तिकार

बंगाल और मथुराके बाद उत्तर भारतमें काशीकी मूर्त्तिकला अधिक लोकप्रिय है। यो काशीके कुछ मेलोमे काशीकी लोककलाओके दर्शन होते है, परन्तु काशीके कुम्हार जाति लोग इस कलाके प्रमुख कलाकार है। इनकी भित्ति चित्रकला भी काशीकी लोक कलामे प्रमुख स्थान रखती है।

काशीके मूर्तिकारोंमें महादेवप्रसाद, गिरिजाप्रसाद, पशुपति मुखर्जी और पाँचू गोपाल प्रमुख हैं।

साहित्यकार

काशीकी मिट्टीका ऐसा प्रभाव है कि राज्यपाल (अब्दुर्रहीम खान-खाना) से लेकर गो-पाल (महान् जन कवि बिहारी) तक यहाँ आकर मुखरित हो उठे। डाकू, महामुनि, महापण्डित, वैरागी, जुलाहा, मोची, और रईस सभी वर्गोंके लोग काशीकी मिट्टीमे पलकर साहित्यिक बन

गये। अगर आपको इन बातोंपर एतबार न हो तो तवारीख उलटकर देख सकते है।

धार्मिक क्षेत्र होनेके कारण काशीमें हजारो यात्री धनकी गठरी लिये पुण्यकी गठरी लूटने चले आते थे। इस बातका पता वाल्मीकिजीको लग चुका था। वे यहाँके जगलोमे उन गठरियोको खाली करते रहे। पता नहीं, नारदजीको क्या सूझा कि उन्होने ऐसे तिकड़ममे उन्हे उलझाया कि वे पेशा छोड बैठे। हाँ, हमेशाके लिए अमर जरूर हो गये। 'उल्टा नाम जपा जग जाना, वाल्मीकि भये ब्रह्म समाना।'

बनारसवाले विद्वानोका हमेशासे उचित सम्मान करते आये है, लेकिन रंग गाँठनेवालोको गर्दनियाँ देनेसे बाज नहीं आते। आज भी यही स्थिति है, यही वजह है कि प्रतिभावान कलाकार यहाँ आकर यहाँके बन जाते है।

वेदव्यासको घमण्ड था कि उन्होने शंकरके पुत्रसे क्लर्की करवायी है, इसलिए वे भी महान् है। बनारसवालोसे उनका 'रंग गाँठना' देखा नहीं गया। नतीजा यह हुआ कि उन्हें गगा उसपार जंगलमे छोड़ आये, जहाँ मरनेपर शीतलावाहन होना पड़ता है। यकीन न हो तो शीतला मन्दिरसे सीधे उसपार जाकर उनसे भेंट कर सकते है।

जहाँ का चाण्डाल शंकराचार्य जैसे महात्माको ब्रह्मज्ञान दे सकता है, वहाँके ऊँचे कलाकार कितने महान् होगे, इसका अनुमान आप स्वयं कर सकते है। कहा जाता है, महामुनि पतञ्जलि जब बनारस आये थे, तब यहाँके गुरुओंने उन्हें इतनी गहरी बूटी दे दी कि उन्होने तुरत नागकूपपर बैठे-बैठे व्याकरण महाभाष्य लिख डाला। बनारसमे लोग मुक्ति पानेकी गरजसे मरनेके लिए आते थे, साथमे अजीबो-गरीब बीमारियाँ लाते थे। इन बीमारोको देखकर महाराज दिवोदास (जिन्हें धन्वन्तरि भी कहा गया है) का दिल 'टेघर' (पिघल) गया और उन्होने जड़ी-बूटियो वाली पोथी (आयुर्वेद) लिख डाली।

गोस्वामी तुलसीदास अयोध्यामें बैठे-बैठे रामायण लिख रहे थे। अचानक उनका मूड बिगड़ा और फिर नही जमा। कहा तो यहाँ तक जाता है कि अयोध्यामें रहकर भी अयोध्याकाण्ड वे नहीं लिख सके। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण अयोध्या काण्डका प्रथम श्लोक है। शंकर के दरबारमे रहकर पहले उनकी बन्दना न कर रामायणकी गाड़ी आगे बढ़ाना उनके लिए संभव नही था। बाबाका माल खाकर नानीका घर आबाद रहे, कैसे कहते ? आज तो हालत यह है कि कितने प्रकाशक, टीकाकार और कथावाचक उनके नाम पर नून-रोटी खा रहे है। संसारमे बाइबिलके बाद सबसे अधिक विक्रय वाली पुस्तक रामायण मानी गयी है। तुलसीदास जी आज अगर जीवित होते तो उन्हे भारतरत्नकी उपाधि, लेनिन शान्ति पुरस्कार और नोबुल पुरस्कार तो मिलता ही, साथ ही रायल्टीकी कितनी रकम मिलती और उसपर उन्हें कितना इनकम टैक्स देना पडता—राम जाने।

कबीरदास जी पैदा हुए हिन्दूके औरससे और पले मुसलमानके घर। वे सचमुच हिन्दू रहे या मुसलमान, इसका निर्णय उनके जीवनकालमें नहीं हो सका। फलस्वरूप इन दोनो सम्प्रदायवालोंको उल्टी-सीधी वाणीमें गाली देते रहे। वही गालियाँ हिन्दी साहित्यमें रहस्यवादी कविता बन गयी। कहनेका मतलब जो चीज समझमे न आये वह रहस्यवादी है। इनकी कवितासे प्रेरणा लेकर रवीन्द्रनाथ कविगुरु और महादेवी वर्मा सर्वश्रेष्ठ कवियित्री बन गयी।

रैदास जी सड़कके किसी पटरी पर बैठे टूटे चप्पल सीते रहे और मन की मौजमे कुछ गुनगुनाते रहे। आखिर बनारसी पानीका असर उनपर क्यो न होता। उनका गुनगुनाना बनारस वालोंके निकट 'भक्त रैदासकी वाणी' बन गयी।

राजनीतिमे चर्चिलका, साम्यवादमे लेनिनका, विज्ञानमें आइनस्टीनका, दालमे हीगका और चूरमामे चीनीका जितना महत्व है, उतना ही वर्तमान

हिन्दीमे भारतेन्दुजीका। काशीको इस बातपर गर्व है कि उसने आधुनिक हिन्दीके जन्मदाताको अपने यहाँ जन्म दिया जो किसी बादशाहसे कम नहीं था। जिसकी देनको हिन्दी जगत् तबतक याद रखेगा जबतक एक भी हिन्दी भाषा-भाषी मौजूद रहेगा।

भारतेन्दुजीके समकालीन साहित्यिकोमे बाबा दीनदयाल गिरि, काष्ठ जिह्वा स्वामी, सरदार कवि, लच्छीराम कवि, पं०दुर्गादत्त, हनुमान्, सेवक, पं० ईश्वरदत्त, राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिन्द', चैतन्यदेव, रामकृष्ण वर्मा, कार्त्तिक प्रसाद खत्री, महामहोपाध्याय सुधाकर द्विवेदी, प्रतापनारायण मिश्र और बाबू राधाकृष्ण आदि थे।

इसके बाद तो काशी हिन्दी साहित्यका गढ़ हो गया। गद्य साहित्यके लेखकोमे किशोरीलाल गोस्वामी, रामदास गौड़, बाबू श्यामसुन्दरदास और पं० रामनारायण मिश्रकी सेवाएं अमूल्य है।

लाखों अहिन्दी भाषा—भाषियोको हिन्दी सीखनेके लिए पेनिसिलिन का इजेक्शन देनेवाले बाबू देवकीनन्दन खत्री काशीकी ही विभूति रहे। काशीका लमही ग्राम उस दिनसे अमर हो गया जिस दिन यहाँ उपन्यास सम्राट प्रेमचन्दजीने जन्म लिया।

व्रजभाषाके अन्तिम कवि जगन्नाथ प्रसाद रत्नाकर और छायावादके प्रवर्त्तक प्रसादजी काशीकी गलियोंमे आँख मिचौनी खेलते रहे। हिन्दीकी सर्वश्रेष्ठ और सर्वप्रथम कहानी 'उसने कहा था' काशीकी ही देन है।

मेरी नजरोंमे हिन्दीमे तीन सर्वश्रेष्ठ कथाकार है। स्वर्गीय बलदेव प्रसाद मिश्र, द्विजेन्द्र प्रसाद मिश्र 'निर्गुण' और राधाकृष्ण। इनमे प्रथम दोनो काशीकी ही विभूति है। यो तो काशीमे कथाकारोका पूरा स्टाक भरा है, उनमे कौन कितना महान् है, यह बताना मुश्किल है। उनकी महानता का पता उनकी रचनाओंमे नही लगता, बल्कि चाय चुस्कियाँ लेते हुए जब वे अपने बारेमे बताना शुरू करते है तब श्रोताओको उनकी महानता

ज्ञात होती है। सभी अपनेको गोर्की, चेखव, मोंपासा, लारेन्स, कुप्रिन, माम, हेनरी और प्रेमचन्द समझते है। कुछ लोग तो ठोक पीटकर गदहों-को घोडा बनाते है, यानी अनाडियोको लेखक बना देते हैं। इधर नये लेखक भी ऐसे बेरहम है कि जहाँ उनकी रचना कहीं छपी बस वे अपने-को गुरू समझने लगे। कहनेका मतलब—

अक्षोहिणियाँ स्रष्टाओंकी, चेले कम उस्ताद बहुत हैं।
तिकडमके बलपर बन जाने वाले कपिल कणाद बहुत है॥
ग्रन्थोंकी संख्या विशाल है सर्जन कम, उन्माद बहुत है।
है स्वतन्त्रंता, भाई साहब! देने वाले दाद बहुत है॥

काशीके वर्तमान कथाकारोंमे वयोवृद्ध श्रीविनोदशकर व्यास, रुद्र काशिकेय, मोहनलाल गुप्त, शिवप्रसादसिंह, हरिमोहन, कमला त्रिवेणी शंकर, राजकुमार, गिरिजाशकर पाण्डेय, हरीश और उदीयमान कंचन-कुमार आदि हिन्दी साहित्यका भण्डार भरते जा रहे हैं।

एक विशेष शैलीके कथाकारोंमें श्री कामताप्रसाद कुशवाहा कान्त अपने पाठकोके निकट सर्वाधिक लोकप्रिय रहे। कान्तशैलीके लेखकोंमे काशीके प्रमुख उपन्यासकार श्री ज्वालाप्रसाद गुप्त 'केशर', गोविन्दसिंह और ब्रह्मदेव 'मधुर' उल्लेखनीय है। अपनी रचनाओंके द्वारा अल्पकालमे इन लोगोने जितने पाठक बनाये, वह किसी भी लेखकके लिए गर्वका विषय हो सकता है। श्रीकेशरकी गणना इन दिनो काशीके प्रमुख उप-न्यासकारोमे की जा रही है।

हिन्दी आलोचनाके जनक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, डाक्टर श्याम सुन्दरदास, आचार्य केशवप्रसाद मिश्र और लाला भगवान 'दीन' जो स्थान बना चुके हैं, उसे स्पर्श कर पाना आज भी मुहाल हो उठा है। आधुनिक समालोचकोंमे स्वर्गीय चन्द्रबली पाण्डेय, डाक्टर हजारीप्रसाद द्विवेदी, विश्वनाथप्रसाद मिश्र, डाक्टर रामअवध द्विवेदी, डाक्टर जगन्नाथ प्रसाद शर्मा और शान्तिप्रिय द्विवेदी अपने विषयके महारथी है।

तरुण आलोचकोंमें सर्वश्री महेन्द्रचन्द्र राय, त्रिलोचन शास्त्री, चन्द्रबली सिंह, नामवर सिंह, विजयशंकर मल्ल और बच्चन सिंह प्रमुख है। श्री महेन्द्रजी मार्क्सवादी आलोचकोंमें ऊँचा स्थान रखते है, आप लिखते बहुत कम है, लेकिन जो लिखते है, वह बिलकुल ठोस। हिन्दी और बॅगलामें आप समान गतिमे लिखते है। शास्त्री लिखते कम हैं, भाषणके रूपमे प्रसारित अधिक करते है। चन्द्रबली सिंहजी बड़े सगदिल आलोचक है, कुछ लोग इन्हें 'जानमारु' आलोचक कहते हैं। उभरते हुए आलोचकोंमें नामवर सिंह प्रगतिपर है। वह दिन दूर नही है जब काशीके ये आलोचक हिन्दी साहित्यमे मूर्धन्य स्थान प्राप्त कर लेगे।

इतिहास, दर्शन, धर्म और संस्कृतिके विद्वानोंमे महामहोपाध्याय पण्डित गोपीनाथ कविराज, डाक्टर भगवानदास; डाक्टर मगलदेव शास्त्री, महामहोपाध्याय पं० नारायण शास्त्री खिस्ते, प० दामोदर गोस्वामी, डाक्टर सम्पूर्णानन्द, पं० गंगाशंकर मिश्र, डाक्टर वासुदेवशरण अग्रवाल, डाक्टर मोतीचन्द, डाक्टर राजबली पाण्डेय और रायकृष्णदासकी सेवाएँ अविस्मरणीय है।

मूल लिपिमे बौद्ध साहित्यके विश्वमे एकमात्र अन्वेषक आचार्य नरेन्द्र-देव और प्रसिद्ध समाजशास्त्री तथा विचारक राजाराम शास्त्रीकी सेवाओसे हिन्दी साहित्य गौरवान्वित हुआ है। प्रसिद्ध कोषकार बाबू रामचन्द्र वर्मा, मुंशी कालिका प्रसाद और मुकुन्दीलालजी काशीकी ही विभूति है।

हिन्दी हास्य साहित्यके स्तम्भ

हिन्दीमे हास्य साहित्यके लेखकोंकी अगर मर्दुमशुमारीकी जाय तो नब्बे परसेण्ट बनारसी ही मिलेगे। हास्य व्यंग्यकी जान बाबू अन्नपूर्णानन्द वर्मा का नाम बॅगलाके परशुराम, उर्दूके चगताई-थानवी, मराठीके पी० के० अत्रे और गुजरातीके ज्योतीन्द्र दवेके नामके साथ लिया जा सकता है।

बेढब बनारसीकी मुहावरेदार भाषा आजके नवीन हास्य लेखकोको बराबर प्रेरणा दे रही है, बेढबजी सिर्फ हास्य साहित्यमे ही 'मास्टर साहब नहीं है, बल्कि गंभीर साहित्यमे आपका अध्ययन और देन भी विशिष्ट है। बेढबजीकी तुलना उर्दूके किसी भी हास्य लेखकसे की जा सकती है। सही मानेमें वे आज हिन्दीके हास्य लेखकोके लिए 'मास्टर साहब' बने हुए है। चोचजीके शब्दोमें आप हिन्दीके अकबर नहीं, हुमायूँ है।

भाषा और शैलीके अप्रतिम कलाकार उग्रजीकी करारी चोटसे आज भी बहुतसे धुरन्धर तिलमिला उठते है। उग्रजीके नामपर आजके कुछ प्रगतिवादी नाक-भौ सिकोड़ते है, पर उन्हें उग्रजीके शब्दोमें दिया गया बयान याद रखना चाहिए—

न जानूँ नेक हूँ, या बद हूँ, पर सोहबत मुख़ालिफ है।
जो गुल हूँ तो गुलखनमे, जो खस हूँ तो हूँ गुलशनमे॥

बेधड़क बनारसी वह हस्ती है जिसने हिन्दी पत्रकारिताके क्षेत्रमे युगान्तरकारी कार्य किया है। द्वितीय महायुद्धके समय हिन्दीके दैनिक अखबार रविवार विशेषाङ्क प्रकाशित नहीं करते थे। इस दिशामे सर्व प्रथम प्रयास उन्होने किया और आज सभी पत्र अपना रविवार विशेषाङ्क निकालकर न जाने कितने लेखकोंकी सृष्टि कर रहे है। उखड़ते हुए कवि सम्मेलनोको जमाना आपके बाये हाथका खेल है।

भैया जी बनारसी 'दादा' के रूपमे उतने ही ख्याति प्राप्त है जितना अरबी न फारसी [दैनिक आजका एक विशिष्ट कालम] के लिए। आपकी हास्य कहानियाँ हमे उर्दूके प्रसिद्ध लेखक कन्हैयालाल कपूर और कैप्टन शफीकुर्रहमान की याद दिलाती रहती है।

रुद्र काशिकेयके नामसे गंभीर और गुरु बनारसीके नामसे हास्यरस की गंगा बहानेवाले पं० शिवप्रसाद मिश्र काशीके दर्शनीय व्यक्तियोंमें है। नीलकण्ठकी तरह आप कई भाषाओंके रसको आकण्ठ पान कर चुके

है जिसका परिचय यदा-कदा उनकी लेखनीसे मिलता रहता है। 'बहती गंगा' आपकी अमर कृति है। बनारसी जीवनपर बनारसी भाषामे जो चीज निकलती है, वह साहित्यमे 'माइल स्टोन' का काम करती है।

स्वर्गीय बलदेवप्रसाद मिश्रका नाम लेते ही हृदयमें एक टीस-सी उत्पन्न होती है। काश ! हिन्दी साहित्यके कर्णधार इनकी कीमत ऑक पाते। हास्य ही नही, साहित्यके सभी अंगोपर समान अधिकार रखनेवाले इस महान् कलाकारका मूल्याङ्कन आज भी हिन्दी जगत् नहीं कर सका है। मिश्रजी जैसे प्रतिभाशाली कलाकार बहुत दिनो बाद हिन्दी साहित्यमे पैदा होते है।

कौतुकजी 'शिवजी' के नामसे प्रगतिशील बनकर आजकल ज्योतिषाचार्य बन गये है। अच्छा हुआ कि आपने अपना चोला बदल लिया वर्ना साहित्यमे भुखमरीके अलावा कुछ नहीं मिलता। आपके 'छींटों' का मुकाबला आजके बड़े-बडे महारथी भी नहीं कर पाते।

चोंचजी जबसे 'राजहस' बने पाठकोंमें उदासी छा गयी थी। अब वे पुनः कमर कसकर मैदानमे उतर आये हैं। नया जोश, नयी जवानी और नया रंग देखकर बड़े-बड़े अखाड़िया और 'यार' लोग आजकल बिदकने लगे हैं।

हिन्दी संस्कृतके प्रकाण्ड विद्वान्, नाट्य, साहित्यके आचार्य और प्रसिद्ध भाषाशास्त्री प० सीताराम चतुर्वेदी हास्य लिखते कम हैं, पर जो लिखते है, बिलकुल 'कटारी मार।'

अशोकजी जबतक बनारसी रहे, तबतक उनकी कलमसे बनारसी मस्ती बहती रही। आजकल वे सरकारी अधिकारी हो गये है।

डाक्टर भानुशङ्कर मेहताके हास्यमे उनकी अपनी मौलिकता है। कुछ पत्रकारोको उनके हास्यमें पैथालाजिस्टकी 'बू' मालूम पड़ती है। फिर भी यह मानना पडेगा कि ये जो हास्य देते है—वह पूर्ण मौलिक और नयी सूझमे ढला होता है।

बनारसके नवोदित हास्य लेखक हीरालाल चौबे को लोग अभी 'बतिया' समझते है पर एक दिन वे पूर्ण कूष्माण्ड बन जायँगे—इसमे सन्देह नहीं।

बनारसके 'गहरेबाज' की 'गहरेबाजी' केवल बनारसमें ही नहीं, पूर्वी उत्तरप्रदेशमे सर्वाधिक लोकप्रिय है। श्री पुरुषोत्तम दवे ऋषिजीकी 'खैरात' को भी नजर अन्दाज नही किया जा सकता। स्वर्गीय इन्द्रशंकर मिश्र, झपसटराय बनारसी, पं० केदार शर्मा और बेखटक बनारसी काशीके हास्य लेखकोमे अपना स्थान रखते है।

साहित्यके आधार

निराला साहित्यके मर्मज्ञ अपनी वर्चस्वी प्रतिभाके धनी त्रिलोचन शास्त्री आलोचककी अपेक्षा कवि रूपमे अधिक तगडे है। त्रिलोचन शास्त्री उर्दूकी रवानगीके बहुत कायल है।

'समयकी शिलापर मधुर चित्र कितने...' के यशस्वी गायक डाक्टर शंभूनाथ सिंहका काशीके कवियोमे जो स्थान है, उससे सभी परिचित हैं। काशीको अपने इस गायक कविपर नाज है।

बड़े बूढोमे श्री अटलजी, अवस्थीजी और श्रीमाली अधिक शक्ति सम्पन्न है। तरुण कवियोंमे श्री ठाकुरप्रसाद सिंह, केदारनाथ सिंह, व्रजविलास और रवीन्द्र 'भ्रमर' हिन्दी साहित्यमे अपना स्थान ग्रहण कर चुके हैं। श्री रत्नशंकर, प्रदीप जी, लालजी सिंह, कैस बनारसी, नजीर, राहगीर, चन्द्रशेखर, महेन्द्र राजा, प्रवासीजी, विष्णुचन्द्र शर्मा और श्रीशकर शुक्ल आदि हिन्दी कविताको निरन्तर प्रवाहमान रखते आ रहे है।

हिन्दी पत्रकारिताके क्षेत्रमें 'बनारस अखबार' से 'बनारस' तक अनेक महान् पत्रकार हो चुके है। पं० बाबूराव विष्णु पराडकर, पं० लक्ष्मण

नारायण गर्दे, बाबू सम्पूर्णानन्द, पं० गंगाशंकर मिश्र, श्री श्रीप्रकाश, प० कमलापति त्रिपाठी और खाडिलकरकी सेवाएं अविस्मरणीय रहेंगी।

काशीमें इतिहास, राजनीति, मनोविज्ञान, प्राणीशास्त्र, गणित और भूगर्भ शास्त्रके अनेक विद्वान् है और उनकी रचनाओंसे हिन्दी साहित्यका भण्डार निरन्तर भरता जा रहा है। इनमे सर्वश्री भिक्षु धर्मरक्षित, डाक्टर गणेशप्रसाद उनियाल, डाक्टर भोलाशंकर व्यास, डाक्टर श्रीकृष्ण लाल, डाक्टर सितकण्ठ मिश्र, कन्हैयालाल वर्मा, पं० करुणापति त्रिपाठी, लालजीराम शुक्ल, प्रोफेसर बी० एल० सहानी, ब्रजरत्नदास, सुधाकर पाण्डेय, पं० लक्ष्मीशंकर व्यास,- विश्वनाथ प्रसाद त्रिपाठी, शारदा शंकर द्विवेदी, गंगानाथ झा, शिवनाथ एम० ए० (आजकल शान्ति निकेतनमे है] पारसनाथ सिह, माधवप्रसाद मिश्र, कमलाप्रसाद अवस्थी, पद्मा अग्रवाल, विनोद जी, चन्द्रकुमार जी, डाक्टर राय गोविन्दचन्द और पद्मावती 'शबनम' आदिका नाम आदरसे लिया जाता है।

स्पेशल नोट—प्रस्तुत लेखमे मैने भरसक काशीके सभी विद्वानोका, अपने इष्ट-मित्रोका, यहाँ तक कि जितने नाम मिल सके उन सभीका उल्लेख किया है। बाहरसे आये साहित्यिकोका जो यहाँ कुछ दिन रहे और चले गये उनकी चर्चा नहीं की है। फिर भी जो लोग छूट गये हो, उनसे नम्र निवेदन है कि वे नाराज न हो। जिनका नाम मस्तिष्कमे नहीं आया, वे लोग मेरे अवचेतनमे जरूर है। अगले संस्करणमे उनकी चर्चा अवश्य कर दूंगा और इस 'स्पेशल नोट'को 'डी लिट' कर दूंगा।

: बनारसके अहीर :

जनसंख्याकी दृष्टिसे काशीमें ब्राह्मणोंके बाद अहीरोंकी संख्या अन्य जातियोंसे अधिक है। शायद ही ऐसा कोई महल्ला होगा जहाँ अहीर न रहते हों। इसका मुख्य कारण यह है कि प्रत्येक बनारसी निखालिस दूधका प्रेमी होता है। घरपर 'पहुँचउवा' अथवा बाजारमें बिकनेवाले दूधपर उसे विश्वास नहीं है। भले ही वह खालिस क्यों न हो। खालिस दूध प्राप्त करनेके लिए लोग तरह-तरहके प्रयोग करते हैं। रईस और अफसर अथवा जिनका रोब अहीरोंपर गालिब होता है, वे अपने दरवाजेके सामने खडे होकर दूध दुहवाते हैं। ऐसे लोग एक गाय या एक भैंसका पूरा दूध क्रय कर लेते हैं। मध्यम श्रेणीवालोंको जरा रियाज करना पडता है अर्थात् तडके या शामके समय जब अहीर थका-मादा नींदमें सोया रहता है तब अनेक बनारसी लोटा-बाल्टी लेकर उसके डाक बंगलेपर हमला कर बैठते हैं। कहनेका मतलब ग्राहकोंकी भीडसे अहीरोंकी नींद खुलती है। इधर ग्राहकोंका विश्वास है जब वह सोया रहे तभी दूध लेने पहुँचना चाहिए वर्ना घपला कर बैठेगा।

दूध दुहनेके पहले खाली बाल्टी देखना, ग्वालेकी प्रत्येक अदाको तजबीजना, पहलेसे किसी और बाल्टीमें दूध दुहकर रखा है कि नहीं, यह देखना और दूध लेते समय फेना हटाकर दूध लेना—यह सब ग्राहकोंके अपने 'ट्रिक' हैं। इतना करनेपर भी लोग इन्हें अविश्वासकी दृष्टिसे देखते हैं। यही एक ऐसा रोजगारी है जो जनताका अविश्वासका सेहरा पहने सड़कोंपर झूमता हुआ चलता है। अपने इस अपमानसे नाराज नहीं होता। शायद सहनशीलताका गुण उसे भगवान् शंकरसे प्राप्त हुआ है।

अब ऐसी हालतमें यदि ग्वालेका मकान घरसे दूर हुआ तो खालिस दूध मिलना दूर रहा—वहाँ तक जानेमे लोग परेशानी अनुभव करते है। समयसे दफ्तर या दूकान नही जा सकेंगे। इसीलिए प्रत्येक बनारसी चाहता है कि दफ्तर, दूकान, बाजार और नदी तट भले ही दूर हो, पर ग्वालेका मकान पास हो ताकि उसके यहाँ हमला करनेमे सहूलियत हो। ग्वालेका घर पासमे रहनेसे तीन फायदे है। पहला यह कि खालिस दूध मिल जाता है, दूसरे 'खतम हो गयल' सुनना नही पड़ता—तीसरे सुबहका टहलना भी हो जाता है। अब उनकी बात ही अलग है जो सुबह शाम ग्वालेके यहाँ हाजिरी बजाना अपनी शानके खिलाफ समझते है। ऐसे लोगोंके यहाँ 'घर पहुँचउवा' दूध देनेकी व्यवस्था है।

इतना 'रियाज' करनेपर भी बनारसी लोग कभी-कभी यह अनुभव करते है कि आज 'पनिहर' दूध मिला है। आज भी कुछ ऐसे बनारसी है जो दूधका कटोरा मुँहमे लगाते ही बता देते है कि इसमे कितने प्रतिशत दूध है और कितना पानी। एक तो दूधसे मक्खन मलाई निकालकर सारा तत्त्व खींच लेते है, फिर उसमे भी पानी मिलाकर देंगे। सुना है, इस दूधमें भी जब कुछ विटामिन रह जाता है तब मशीनके जरिए उसे भी निकाल लेते है ताकि जनताका स्वास्थ्य खराब न हो जाय।

बनारसके निवासियोंको असली दूध प्राप्त हो, इस उद्देश्यसे प्रेरित होकर एकबार बनारस नगरपालिकाने रबड़ी-मलाईपर कण्ट्रोल लगा दिया था ताकि यह सामान न बननेपर लोगोंको विटामिन युक्त असली दूध प्राप्त होगा। यद्यपि उस समय कुछ भाई लोगोने जो रातको मलाई-रबड़ीसे रोटी खाते है—आपत्ति की थी। लेकिन इधर असली दूध पीते ही लोगोंमे अपचकी शिकायत इतनी गहरी हुई कि इस कानूनको बदल देना पड़ा।

खालिस दूध प्राप्त करनेके लिए बनारसी लोग अपना 'तिकड़म' करते रहते है, पर उनकी 'तिकड़म' काम नहीं देती। पता नही, नटवर श्यामके

ये जाति विरादर कब घपला कर बैठते है। यदि स्काटलैण्डयार्ड वाले इस बातकी खोज करे तो इस रहस्यपर कुछ प्रकाश डाल सकते है। यद्यपि आजका जमाना ही घपलेबाजीका है। सोना-चाँदीमे, घीमे, साहित्यमे, राजनीतिमे यहाँ तक कि अच्छी लड़की दिखाकर काली कलूटी लडकीको कन्यादानमे देकर ससुर लोग घपला कर बैठते है—फिर दूधमे घपलेबाजी करना कोई भारी जुर्म नही, जबकि आप सामने खड़े होकर दूध दुहवाते है—सिर्फ इसीलिए न कि आपका उनपर विश्वास नही।

इधर ग्वालबन्धु मस्त रहते है। कोई कितना ही अविश्वास क्यो न करे—वे साफ काम करना पसन्द करते है। वे आपके सामने दूध दुहने को तैयार है, आपके दरवाजेपर गाय ले जाकर दूध दुह सकते है। आपके घर पहुँचाते भी हैं। वे हर तरहसे ग्राहकको खुश रखना चाहते है, पर ग्राहक न जाने क्यो उनका विश्वास नहीं करते जब कि खोपड़ीपर सवार होकर दूध दुहवायेगे। लोग यह नही सोचते कि सबको दूध देना पडता पडता है, अगर किसीको न दे तो उनका मुँह फूल जाता है, बकाया पैसा पानीमे चला जाता है। अगर सबको खुश न रखे तो गणतन्त्रकी परम्परा ही बिगड जाय। ग्राहकोको तो शिकायत करनेकी आदत ही पड गयी है। हजार खालिस दो, पर विश्वास नहीं करते। महीने भर दूध पिलाओ और पैसा देते समय नानी मर जाती है। आज तनख्वाह नहीं मिला—लो आज कुछ रुपये ले जाओ—अगले महीनेमे इकट्ठे दे देगे—आदि बहाना सुनाते है। वे यह नहीं समझते कि आजादी सिर्फ उन्हें नहीं मिली है—हैवानोको भी मिली है। एक तो गाये पहलेकी तरह दूध नहीं देतीं, दूसरे नाप-तौलकर दूध देती है। जब मनमे आया 'पनिहर' दूध देगी। कुछ तो अपने बच्चेके लिए चुरा लेती है। कुछ मनहूस ग्राहकोको देखकर बिदक जाती हैं और जल्दी 'पेन्हाती' नही। भले ही उनके आगे भूसा भरकर नकली बछवा क्यो न रख दिया जाय।

काशीके राजपूत

वीरता और स्वातंत्र्य-प्रेमके लिए राजपूत जातिका नाम बड़े आदरसे लिया जाता है। इनकी प्रशस्तिमे इतिहासके अनेक पृष्ठ रंग दिये गये है। लेकिन आश्चर्यका विषय है कि अहीरोके बारेमे खास चर्चा नही की गयी है जबकि योद्धाके रूपमे यह जाति राजपूतोसे किसीभी हालतमे कम नहीं है। अन्य शहरोंकी बात तो मै नहीं जानता पर काशीमे यही एक ऐसी जाति है जिसमे युयुत्साकी भावना भरी रहती है।

काशीमें जब कभी विदेशी हमले हुए अथवा दंगा फसादके दिनो इस जातिके लोग लट्ठ लेकर मैदानमें हमेशा आगे आये है। इन लोगो ने इस बातको कभी परवाह नहीं की कि मुकाबलेके दुश्मनोके पास बन्दूक और राइफले है। इनका तो बस एक ही मूल मंत्र रहता है या तो हराकर लौटेंगे वर्ना सही सलामत घर वापस नहीं आयेंगे। इनके प्रिय हथियारोमे गॅड़ासा, तेजा बिछुआ, बल्लम और सेगरी (तेलसे पकी मीरजापुरी बासकी लाठी जिसकी हर गाठपर लोहेकी कील और निचला भाग लोहेके मोटे आवरणसे जड़ा रहता है) है। सिर्फ इन्हीं हथियारोकी बदौलत एकबार नही, अनेक बार बनारसकी शान और जनताकी रक्षा हुई है। सेगरी चलानेमे सिद्धहस्त अहीर जितना अपनी शक्ति पर अभिमान नहीं करता, उससे अधिक इस हथियारपर करता है। अगर यह अस्त्र उसके पास रहे तो दस-बीस शत्रु उसका कुछ बिगाड़ नहीं सकते। प्रसंगवश यहाॅ प्रथम विश्वयुद्धकी एक घटनाका उल्लेख कर देना अप्रासंगिक न होगा।

सन् १९१४की लडाईमे काशीसे कुछ अहीर लड़ाईमें रगरूट बनकर गये हुए थे। कहा जाता है जब जर्मनोंकी फौज तेजीसे आगे बढ़ रही थी—समय पर मदद न पानेके कारण अँग्रेज हतोत्साह हो गये थे। उस समय देशी पलटनको आगे कर वे पीछेकी ओर घसक

समय सुननेवाले रात भर खड़े होकर सुनते रहते है। भावोकी चमत्कारीके अलावा ज्ञानकी गहानता और स्मरण-शक्तिकी परीक्षा हो जाती है। सवाल-जवाब भी होते है। यही एक ऐसा जन समारोह है जिसमे लाउड स्पीकरकी जरूरत नहीं होती। इस गीतमे संगतके लिए न तबलेकी जरूरत होती है न मृदंगकी। सारंगी या सितारकी आवश्यकता नही होती। ध्रुपद-दादरा-विलम्बितके राग नहीं देखे जाते। शायद इसीलिए आजकल चुनाव आदिके मौकेपर इस गीतका अधिक प्रचार होने लगा है। कुछ प्रगतिशील कवियोंका झुकाव इस ओर हो गया है।

एक हाथसे एक कान ढाँककर आसमानकी ओर मुँह किये जब विरहा गायक टीप अलापता है तब सडकके दूसरी ओर तक उसकी आवाज गूँज उठती है। इधर इस गीतके साथ "करताल"का प्रयोग होने लगा है। विरहा गानेके लिए न कोई मौसम है, न समय। उसके लिए मूड बनानेकी आवश्यकता नहीं होती। जब जहाँ जीमें आया, गाया जाता है। कहा जाता है कि विरहा गायक तोतली जबानके दोषको दूर कर देता है। पक्के गानेवालोको टीप अलापनेकी प्रेरणा विरहा गायकोसे मिली है।

काशीका अहीर बडा विनम्र होता है। बाबू, भइया और गुरुजी सम्बोधनोंके साथ दूसरोसे बातचीत करता है। लेकिन जब वह ऐंठ जाता है तब किसीको कुछ नहीं समझता। अकड़कर चलना उसकी खास आदत है। उसके चलने फिरने, दूध दुहने और बातचीत करनेमें एक अदा होती है। जिसे बिना देखे या अध्ययन किये समझाया नहीं जा सकता।

- विवाह आदिके अवसर पर भले ही बारातके साथ पुलिस बैण्ड, रामनगर स्टेट बैण्ड रहे, पर दुल्हाकी पालकीके पास बारह सींगा, डफली और घण्टे वाला बाजा जरूर बजता रहेगा। इसी बाजाका अध्ययन कर बनारसी समझ जाते है कि सरदारकी बारात है। उसके बारातमें रिश्तेदारोके अलावा टाट (जाति)के लोग रहते हैं। सबको कच्चा भोजन

कराता है। पैसे वाले अहीर जब दाल-भात खिलानेके बाद पूड़ी और लड्डु खिलाते है तब उसकी बड़ी चर्चा होती है—'पुड़ी आउर लड्ुआ चलउले रहल।'

भारतनाटयम, कथकली, सॉवताली और मणिपुरी नृत्यसे अलग ढगसे उसका नृत्य होता है। उसके नृत्यमे औरतोकी आवश्यकता नहीं होती। कोई भी पुरुष अपने ऊपर दुपट्टाडालकर औरतोका भाव प्रदर्शन कर लेता है। डफलीके बाजेके साथ दो पुरुष खुशियालीके मौकेपर बड़े विचित्र ढंगमें नृत्य करते है।

बउलियापर नहाना, गैबीपर भाग छानना, गंगा किनारे साफा लगाना, रामकुण्ड और सगराके तालाबपर मवेशियोंको नहलाना, उस-पार निपटना और संकटमोचनका दर्शन करना उसका निशि-दिनका काम है। शारीरिक विकासके लिए वह मलाई-रबडी चाभता है, दण्ड-बैठक करता है, गदा-जोडी फेरता है, लाठी चलाना सीखता है और नाल उठाता है।

जिस वक्त वह मवेशियोको लेकर सडकपरसे गुजरता है, उस समय लगता है जैसे काशीका राजा या रईस वह स्वयं है। समूची सड़कपर मवेशियोको फैलाये कन्धेपर लाठी रख झूमता हुआ चलता है। उसे इस बातकी फिक्र नहीं रहती कि ट्राफिक जाम हो रही है, आगे किसीको चोट लग जायगी या कोई खतरा हो जायगा। यद्यपि अहीर हमारे सामाजिक जीवनका एक आवश्यक अग है, पर सर-दर्द भी कम नहीं। शहरके किसी भी अचलमें जब आप प्रवेश करिये और आपकी नाकमें दुर्गन्ध आये तब समझ लीजिये कि इस गलीमे किसी सरदारका डाक बगला है?

: बनारसकी संस्थाएँ :

बनारसमे कुल कितनी संस्थाएँ हैं, इसका हिसाब लगाना आसान नहीं है। रजिस्टर्ड संस्थाओंकी सूची तो सरकारी दफ्तरसे प्राप्त हो सकती है, पर अनरजिस्टर्डकी सूची केवल समाचार पत्रोंमे प्रकाशित उत्सव-आयोजनोंके समाचारोंसे ही ज्ञात हो सकती है।

संस्थाकी परिभाषा

संस्थाका अर्थ क्या है और संस्था बनायी क्यों जाती है? मुमकिन है आप यह बात न जानते हों। जिनकी कहीं सुनवाई नहीं होती अथवा अपनी बातें नये ढंगसे पेश करना चाहते हैं किंवा अपना उल्लू सीधा करना चाहते हैं, रोजी-रोजगार या जलपानकी व्यवस्था करना चाहते हैं, नेतागिरीकी ख्वाहिश रखते हैं—ऐसे लोगोंकी जमातको संस्था कहते हैं। संस्थापक उसे कहते हैं जिसके दिमागमे भाँगके नशेमें या चायकी चुस्की लेते समय यह विचार उत्पन्न हो जाय कि एक ऐसी संस्थाकी आवश्यकता है और वह कुछ मित्रोंपर अपनी यह राय जाहिर कर दे। सदस्योंसे कुछ अधिक चन्दा देनेवाला सभापति होता है। ऐसी संस्थाओंमें दो प्रकारके सदस्य होते हैं—एक विशिष्ट, दूसरे साधारण। विशिष्ट सदस्योंमें सभापति (यदि फालतू व्यक्ति नहीं है तो कोरम पूरा करनेके लिए उपसभापति भी रख लिए जाये हैं) संस्थापक, मन्त्री, उपमन्त्री और कोषाध्यक्षके अलावा कुछ इनके साथी, दोस्त होते हैं जो कि चन्देकी रकमका 'सदुपयोग' करते हैं। संस्थाएँ चन्देकी रकमसे चलती हैं, इसके अलावा गाढ़े वक्त जनतासे भी मदद ली जाती है! आखिर उन्हींकी 'भलाईके लिए' तो ये नेता, ये पदाधिकारी तन-मनसे लगे हुए हैं वर्ना इन्हें क्या गरज पड़ी है? चन्देकी

रकम अधिकतर सभापतिजीकी माला और रिक्शा किरायामे, विशिष्ट सदस्योके जलपानमे और मन्त्री तथा कोषाध्यक्षके घर गृहस्थीके काम आती है। अविश्वासका प्रस्ताव लानेवाले, चॉव-चॉव करनेवाले भी विशिष्ट सदस्य होते है। साधारण सदस्योकी इज्जत केवल चुनावके समय होती है।

बनारसी संस्थाएँ

अन्य शहरोकी संस्थाओका अध्ययन इस लेखकने नहीं किया है, पर बनारसी संस्थाओके बारेमे वह कुछ जानता है। बनारसमे एक ऐसी संस्था है जिसमें सभापति, संस्थापक, मन्त्री, कोषाध्यक्ष और सदस्य एक ही व्यक्ति हैं। कुछ संस्थाएँ ऐसी हैं जिनके साइनबोर्ड दिवालोपर लटकते है, पर कभी कोई कार्रवाई नहीं होती। काशीके कुछ साहित्यिक किसी-न-किसी संस्थाके संस्थापक, सभापति, मन्त्री अथवा कोषाध्यक्ष अवश्य होते है। उनकी जेबमे चन्देकी बही, कार्ड, निमन्त्रणपत्र और लेटरपैड अवश्य रहता है। कहनेका मतलब यह कि उनकी कमीजमे जितनी जेब है, उससे अधिक उनके पास संस्थाएँ है। जो जितना व्यस्त है, वह उतना ही बड़ा है। इस तरहकी संस्थाओंके जन्मदाता बनारसके होटल और लस्सी-चाय की दूकाने है, क्योंकि विशिष्ट व्यक्तियोंके रहते हुए भी कोई इन्हे अपने घर मीटिंग करने नहीं देता। यही वजह है कि बजड़ेपर कवि सम्मेलन या गोष्ठीका आयोजन होता रहता है। किसी संस्थाका वार्षिकोत्सव करना है तो झट उनके मन्त्रीसे लेकर कोषाध्यक्ष तक चन्देकी रसीद लेकर होटलोमें चक्कर लगाना शुरू कर देते हैं। यदि आप जरा-सी दिलचस्पी लेते है तो आपको ये लोग मूँड़नेसे बाज नहीं आयेंगे। आपकी कृतिकी तुलना प्रेमचन्द, गोर्कीसे, आपकी उदारताकी धन्ना सेठसे और प्रतिभाकी तुलनाके बारेमें पूछिये मत। बस जो कुछ है, आप ही हैं। किन्तु जब चन्देकी रसीद कट गयी तब आपकी गणना मूर्खोमें की जाती है। पूरा चन्दा देनेपर भी जल्सेमें आपको एक बीडा पान या एक कप चायके लिए पूछा

जायगा। अगर प्रबन्धक शरीफ आदमी है तो हाथ जोड़ देगा और कुछ अपरिचितोंसे परिचय करा देगा—बस। बहुत अधिक शरीफ हुआ तो चाय जलपानको पूछ लेगा।

साहित्यिकोंकी तरह प्रत्येक शिक्षक और प्रत्येक राजनीतिक नेता किसी-न-किसी संस्थाका संस्थापक है। कुछ लोग तो एकसे अधिक संस्थाके संस्थापक है। सरकारसे सहायता लेनेके लिए भरसक प्रयत्न होते हैं, बैठकोंमें भले ही 'बाप-पूत बराती' 'माई-धिया गौनहारिन' की कहावत चरितार्थ हो अर्थात् सभापति, मन्त्री और कोषाध्यक्षके अलावा अन्य कोई उपस्थित न रहे, लेकिन दूसरे दिन समाचार पत्रोंमें इन तीनों व्यक्तियोंका भाषण लिखकर जरूर छपनेके लिए जाता है।

सबसे बड़ी खूबी यह है कि इन संस्थाओंका वार्षिकोत्सव काफी धूम-धामसे मनाया जाता है और उसके लिए कहीं-न कहीं स्थान प्राप्त हो जाता है। लेकिन मीटिंग तो किसी भी रेस्तरा होटलमे चायकी चुस्कियाँ लेते समय ही होती हैं। ये ऐसी सस्थाएँ हैं जिन्हें आप 'चलती फिरती संस्थाएँ'की संज्ञा दे सकते है।

कुछ प्रतिष्ठित संस्थाएँ भी काशीमे हैं, किन्तु आप यदि उनमें पहुँचे तो कार्यवाही शुरू होनेके पहले वहाँकी समस्यापर बहस करनेके बजाय आलू-परवलका भाव, बेकारीकी चर्चा, वेतनकी मुसीबत और दफ्तरकी परेशानियोंकी चर्चा चल पड़ती है। सभापतिके आने पर (बनारसमें मन्त्रियों तथा माननीय श्री श्रीप्रकाशजीके अलावा कोई भी समयसे नहीं पहुँचता) जब कार्यवाही शुरू होती है तब अजीब 'कौवारोर' मचता है। गनीमत समझिये कि सभापतिजी कुछ 'सम्हाल' लेते हैं।

कुछ ऐसी संस्थाएं है जहाँके सभापतिको खाने-पीनेका डौल लग जाता है, वहाँके सभापति मेम्बरोंके वोट अपनी जेबसे रकम खर्चकर खरीदते है। यह मानी हुई बात है कि अगर आपका सदस्यता शुल्क कोई चुका देता है

तो आप उसका ही गुण गायेंगे। बनारसमें ऐसे सभापति और ऐसे सदस्योंकी कमी नहीं है। फलस्वरूप अच्छी संस्थाएँ भी राजनीतिका अखाडा बन जाती है। संस्थाके नामपर चन्दा माँगकर कुछ लोग घरखर्च चलाते है। जिनका सरकारी अधिकारियोंपर प्रभाव है, उनका क्या पूछना।

एक ऐसी संस्था है जिसकी एक बैठकमें कुल १२ आदमी उपस्थित थे, फलस्वरूप कोरम पूरा न होनेके कारण बैठक स्थगित कर दी गयी। लेकिन चुनावके समय खदेरू-बखेड़ू सभी आये थे। चाय-जलपानका भी टोटा पड़ गया। कुछ लोग जब यह जान लेते हैं कि आज जलपानका 'दिव्य' प्रबन्ध है, तब सबसे पहले पहुँच जाते है, वर्ना साधारण सदस्यको कौन कहे मन्त्री-सभापति और कोपाध्यक्ष तक लापता रहते है।

बनारसमें कुछ 'मौसमी' संस्थाएँ है जो जाड़ेमे होटलोंके किसी कमरेमे और गर्मीके दिनोंमे बजड़ेपर गोष्ठियाँ करती हैं। भाग छानी, गलेबाजी की और चाय जलपानके पश्चात् घर लौटे। बनारसकी अनेक साहित्यिक संस्थाएँ इसी तरहकी हैं। इनमें गम्भीर विचार विमर्श नहीं होते—केवल तफरीहके लिए आयोजन होता है।

यही वजह है कि लोग चन्दा माँगनेवालोंसे घबराते हैं। उनका हाल ठीक उस व्यक्ति जैसा हो जाता है जो दिल्लीका लड्डू खाय तो पछताय, न खाये तो भी पछताय। अगर वे चन्दा नहीं देते तो बुरा और दे दिया तो बेकार हुआ। संस्थाओंकी यह हालत जनतासे छिपी नहीं है, इसलिए साहित्यिक आयोजनमे वह दिलचस्पी नहीं लेती। लेकिन तफरीहवाले आयोजनोमे टूट पड़ती है। अगर नाटक आदिका प्रोग्राम हुआ तो हर मेम्बरको कमसे कम तीन पास चाहिए। एक उसके लिए, एक बीबीके लिए और एक फालतू। बच्चोंके लिए फ्री कन्शेसन रहता है। यद्यपि निमन्त्रण पत्रमे—बच्चोंको साथ लाना मना है—छपा रहता है। 'खानदानके चिरागको' साथ न रखे तो कहाँ छोड़ जायँ। इसके अलावा पितामें जो गुण

मौजूद है, वह उनकी सन्तानोंमें भी उत्पन्न हो—यह दृष्टिकोण तर्कमें प्रस्तुत किया जाता है।

अगर आप खुशहाल ज़िन्दगी व्यतीत करना चाहते है तो भूलकर किसी भी संस्थाका मेम्बर मत बनिये यह एक नेक सलाह है।

: बनारस के यान-वाहन :

जिस नगरीके राजाका वाहन साँड़, रानीका वाहन सिंह, राजकुमारका वाहन चूहा, युवराज (षड़ानन)का वाहन मयूर और कोतवालका वाहन कुत्ता हो, उसकी विशेषता विचित्रताकी खोजमे आजके भयंकरसे भयंकर वैज्ञानिकको श्रीमती नानीकी याद आये बिना न रहेगी।

राजा-रानी-युवराज-कोतवालके इन वाहनोपर मुलाहजा फरमाये—सभी एक दूसरेके जानी दुश्मन! एक ही परिवारमे इतने खतरनाक 'फिगरों'को समेटकर रखना, सचमुच कठिन समस्या है। मजा तो यह है कि कोई भी अपने वाहनोमें, 'चेज' करनेको तैयार नहीं।

अपना ख्याल है, अपनी काशीके राजा शंकर गॉडने, वाहनोके प्रश्नपर 'गृह युद्ध' न हो जाय इसीलिए सबके लिए अलग निवासकी व्यवस्था कर दी।

कोतवाल साहबकी 'कोतवाली' भैरोनाथ, राजकुमार साहबको लोहटिया तथा रानीका रनिवास शहरके एकदम दक्खिनमें। पतिसे इतनी दूर रहनेमें दुर्गाजीको अखरा तो, पर अपने वाहन सिंह महोदयकी 'गुंडई'से वे परिचित थीं सो स्वीकार कर लिया। हजरत सिंह आदतन खूनी थे। राजाके वाहन मिस्टर वृषभको तो वे अपना 'राशन' ही समझते थे।

यह 'पारिवारिक-पार्टीशन' कब हुआ?—इसपर अपने पुराणोंने चुप्पी साध ली है सो हमे भी चुप ही रहना है।

अब आइये, प्रजाके यानो (सवारी) पर········

काशीकी सड़कोंपर रिक्शा, तागा, इक्का, टैक्सी और सरकारी बसे चलती है। पहले यहाँ काफी तायदादमें खुली तथा बन्द दोनों किस्मोकी बग्घियाँ चलती थीं। खुली बग्घियोंपर पुरुष और बन्द बग्घियोंमें

महिलाएँ बैठती थीं। बग्घियोंपर बैठनेवाले रईस समझे जाते थे। उस जमानेमे बग्घियाँ रखना साधारण बात नहीं थी। कौन इतना बडा ढड्ढा रखनेके लिए अस्तबल बनवाये। इसके अलावा दो-दो साईस रखना पडता था, वर्ना स्कूली लड़के पीछे उचककर बैठ जाते थे जिससे रईसीमे बट्टा लगता था। जो लड़का नहीं बैठ पाता था, वह शैतानी करनेके लिए—"बग्घीवान, पीछे लड़का, लगे चमोटी।" आवाज दे देता था। इस प्रकार लड़के मुफ्तमे रईसीकी शानपर चूना लगाते फिरते थे। मजबूरन पीछे चाबुक मारना पड़ता था। इसके अलावा शादी-बारातमे हमेशा मंगनी भी देनी पडती थी। इन्हीं सब झंझटोंके कारण रईसोंने बग्घीका रखना छोड़ दिया। आजकल भी कुछ लोगोके पास बग्घिया है पर उनका कोई खास महत्व नहीं, वर्ना उस जमानेमें जनाब यो अकड़कर इस गाड़ीपर बैठते थे—मानों लार्ड कर्जन जा रहे हो। आजकल जो चन्द बग्घियाँ सड़कोपर दिखाई देती है, उसपर महिलाएँ गंगा नहाने, विश्वनाथ दर्शन करने अथवा किसी सखी-सहेलीसे मिलनेके लिए जाती है।

बग्घियोंके बाद तागोका दर्जा माना जाता है। कहनेका मतलब जिस प्रकार बम्बईमे टैक्सीमें फर्स्ट क्लासके अफसर, बसमे सेकेण्ड क्लासके अफसर, लोकल ट्रेनमे थर्डक्लासके बाबू और ट्राममे कुली-कबाड़ी चढ़ते है, उस प्रकार बनारसमे बग्घीका दर्जा फर्स्टक्लास रहा तो तागा सेकेण्ड क्लास। स्वयं बनारस नगरपालिका उन्हें दोयम क्लासकी सवारीका सार्टिफिकेट देती थी और आज भी देती है। स्टेशनसे उतरने पर इक्केवाले भले ही दौड़ आये, पर तागेवाले कभी नहीं आते थे। किराया तो हमेशा चौगुनी हाँकते थे। कुछ कहिए तो तुरत कहते—'बाबू ई एक्का नाहीं हौ। तॉगा हौ तॉगा।" कहनेका मतलब यह रईसोंके लिए गाड़ी है, कबाड़ियोंके लिए नहीं। आपको गरज हो बैठिये और रईस बनिये, वर्ना इक्का तैयार है ही। उन दिनो सवारीवाले इक्कोपर चढ़ना

शानके खिलाफ समझा जाता था। इक्केकी गणना थर्ड क्लासकी सवारियोंमे होती थी। तागेपर बैठनेवाला आदमी रईस न सही, बड़ा आदमी जरूर समझा जाता है।

ताँगोके बाद बनारसमे इक्कोका नम्बर आता है। ऊपर जैसा कि कहा जा चुका है कि इक्का थर्ड क्लासकी सवारी समझी जाती है—यह बात सभी इक्कोके लिए लागू नहीं है। सवारी इक्का उन इक्कोको कहा जाता है जो कचहरी, स्टेशन, विश्वविद्यालय या मुख्य बाजारोमे चलते है। जिसके घोड़े महीनेमें १५ दिन सात्विक भावसे एकादशी व्रत रखते है। 'कम खाना, गम खाना' उनका गुरुमंत्र होता है और जो मंजिले मकसूदतक जानेके लिए दस कदम आगे तो पाँच कदम पीछे हटना अपना 'पुण्य नियम' मानते है।

नगरपालिकाके नियममें ऐसे इक्कोपर तीन सवारीका बन्धन भले ही हो, परन्तु इक्केवाले सवारीकी संख्या पाँच होनेमे विशेष 'सन्तुष्टि' प्रकट करते है। अगर कहीं ऐसा न हुआ तो समझ लीजिये, रास्ते भर, चनेवाले पंसारी, घासवाले घसियारोके प्रति उसके मुखसे ऐसे 'पुनीत संबोधन' प्रसारित होगे कि सवारीको 'आनन्द' आ जाता है। बेचारे घोड़ेकी मा बहनोंसे अपना निकट सम्बन्ध, चाबुककी फटकारमे, वह समा बाधेगा कि फिर.........

इसके ठीक विपरीत इक्कोंकी दूसरी श्रेणी होती है—गहरे-बाज! इसके घोड़े हेल्थ बनानेके लिए दूध-घी-मलाईका भी सेवन करते हैं। इसपर बैठना सौभाग्यमे शुमार किया जाता है। अधिक्तर ये प्राइवेट होते है। एक पुराने रईसने अपने 'गहरेबाज घोड़ोंके लिए कबीरचौरा मुहल्लेके पास, किसी जमानेमे, जो 'तबेला' बनवाया था, वह छोटे-मोटे महलसे होड लेता था! आज भी 'लल्लन-छक्कनका तबेला' देखकर उस रईसीकी चमकका अनुमान लगाया जा सकता है!

गहरेबाज

गहरेबाजका अर्थ अपने आपमें इतना ठोस है कि उसकी अधिक व्याख्या करनेकी जरूरत नहीं। सीधे-सादे शब्दोंमें—गहरेबाज इक्का उस गाड़ीको कहते है जो 'तीन सवारीसे अधिक मत बैठाओ, बॉयेंसे चलो, १० मीलकी रफ्तारसे चलो' इत्यादि कानूनको धक्का लगाना अपनी शान समझता हो। अगर कोई इक्का गहरेबाज है तो वह दुलकी चालसे भी चल सकता है और सरपट चालसे भी। बनारसमें एक कहावत मशहूर है कि दमकल जब आग बुझानेके लिए चलता है तब उसके लिए सात खून माफ रहता है अर्थात् दमकल गन्तव्य स्थानपर पहुँचते-पहुँचते सात लाश सड़कपर बिछा दे, तो उसे रोका नहीं जा सकता और न उसपर मुकदमा चलाया जा सकता है। ठीक उसी प्रकार जब बनारसी गहरेबाज सड़कपर चल रहा है तब उसके लिए कितने खून माफ है, इसका परिमाण नही है। यही वजह है कि ट्राफिक पुलिस भूलकर भी कभी गहरेबाजोंका चालान नहीं करती। जबतक वह हाथ उठाकर गाडी-को रोके या नोटबुक निकालकर कुछ दर्ज करे तबतक गाड़ी भाष्करा, गैबी या रोहनिया पहुँच जाती है।

गहरेबाज रखना साधारण कलेजेकी बात नहीं है। गहरेबाज रखना, हाथी पालनेके बराबर माना जाता है। ऐरे-गैरे नत्थू खैरे इसे रख ही नहीं सकते, भले ही करोडपति या लखपतिका साइनबोर्ड अपने पीछे क्यो न लटकाये हुए हों। अब अधिकतर बहरी अलंगके शौकीन गुरू, रईस और सरदार लोगके पास गहरेबाज दिखाई पड़ते हैं। जिनकी तबीयत गंहरेबाजी किये बिना नहीं मानती।

गहरेबाजोंका रेस अब तो नहीं के बराबर होता है। जब बनारस इतना गुलजार नहीं था तब सड़के अधिकतर सूनी रहती थीं। गहरेबाजकी गहरेबाजी शामको अथवा सुबह होती थी। उन दिनों

गहरेबाजोकी टापोसे बनारसकी सड़के कॉपा करती थी। क्या मजालकी गहरेबाजको काटकर दूसरा गहरेबाज निकल जाय। यह अपनी शानके खिलाफ बात मानी जाती थी। हमेशा एक दूसरेको पिछाड़नेके लिए—वाह पट्ठे भिड़ल रहे, कहाँ जाला सरवा—हटल रहे बॅायेसे—जाये न पावे—आदि नारोसे वातावरण मुखारित करते रहते है। घोड़ोको भी अपनी जवानीकी सारी ताकत अपने प्रतिद्वन्दीकों पिछाड़नेमे लगा देनी पडती थी। जब यह रेस किसी सड़कपर शुरू होती है तब देखने लायक दृश्य होता है। मीलों दूर रहनेवाले लोगोको यह मालूम हो जाता है कि गहरेबाज आ रहा है। फलस्वरूप लोग एक किनारे हट जाते थे। घोडोंकी नालसे चिनगारियाँ छूटने लगती है, उसपर सवार लोग प्राण हथेलीपर रखे, खूँटी पकड़े घोड़ेको बढ़ावा देते हुए आगे बढ़ जाते थे। बम टूट जाना, आपसमे भिड़ जाना और घायल हो जाना साधारण बात थी। रेसमे पिछड़ जाना, मुखपर कालिख पुत जानेसे कुछ अधिक ही समझा जाता है। पहले लोग हारे हुए घोड़ोंको मनहूस मानकर गोली मार देते थे और इक्केमे आग लगा देते थे।

आज भी मडुआडीहके उसपार, सारनाथ और रामनगरके मेलेमे गहरेबाजोका दृश्य देखनेमें आता है।

टैक्सी, जीप, लारी और पीकअप तो बनारसके कुली कबाड़ियोंके पास भी है, पर बनारसी इक्का चुने हुए लोगोके पास है। आपको मोटर, लारी और हवाई जहाजतक किरायेपर मिल सकते है और जीप, टैक्सी तथा पिकअप जरूरत पर मॅगनीमें भले ही मिल जॉय, पर बनारसी गहरेबाज न मँगनीमें मिलेगा और न किराये पर।

आप अपने मनमे भले ही गर्व कर ले कि अबतक आप जहाज, स्टीमर और समुद्री जहाजमें सफर कर चुके है; बचपनसे अबतक खच्चर, गदहा, ऊँट और घोड़ेपर चढ़ चुके है, पर अबतक आपको

गहरेबाजपर चढ़नेका सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ होगा। गहरेबाजपर आप तभी सवारी कर सकते है जब आपकी जान-पहचान किसी बनारसी रईससे हो और उसके पास गहरेबाज हो। साथ ही उसे नित्य बहरी अलंग जाकर नहाने-निपटनेकी शौक हो। बनारसी गहरेबाज बनारसके साधारण यानोमे नहीं है, बल्कि उसे बनारसकी शान समझी जाती है। इस यानको इतनी इज्जत बक्शी गयी है कि एक विशुद्ध बनारसी इस गाड़ीके आगे रोल्स रायसकी मोटरको दो कौड़ीका समझता है।

गांधी ब्राण्ड यान

बग्घी, तागोके बाद तृतीय श्रेणीकी सवारी रिक्शाको माना गया है। यही एक सवारी बनारसकी साम्यवादी सवारी है। कुछ लोग इसे गाँधी ब्राण्ड (थर्ड क्लास) सवारी कहते हैं। इसपर सईससे लेकर रईसतक, मंत्रीसे पद्म-विभूषण तक बिना संकोच बैठते है। एक बात यह बता देना आवश्यक समझता हूँ कि बनारसी रिक्शोका किराया भारतके सभी शहरोसे काफी सस्ता है। यहाँ आधा रिक्शा किराये पर मिलता है और पूरा रिक्शा भी। कहनेका मतलब यदि कोई एम० एल० ए० रिक्शेपर बैठा हो और रिक्शावाला अन्य एक सवारीकी तलाशमे है तो आप पैसे देकर उसपर बैठ सकते है। एक सवारीसे दो सवारीका पैसा नही लिया जाता बशर्ते आपने पूरा रिक्शा न कर लिया हो!

इस गाँधी-ब्राड यान—यानी रिक्शेने, इक्केवालोकी कमर तोड़ दी है और तागेवालोकी हालत पतली कर दी है। लोकप्रियताका प्रमाण इससे बडा और क्या हो सकता है कि इस समय बनारसमें संभवतः नगरकी आबादीमें, दस परसेट रिक्शा चालक हैं।

हाँ, इस प्रगति युगमे भी, जबकि सरकारकी मुख्य इनर्जी 'नव-निर्माण'मे सर्फ हो रही है, कुछ सडके 'सौतके बच्चो'की संज्ञासे विभूपित

है। ऐसी सड़कोपर अगर रिक्शेपर सवारी की जाय तो लगभग वही अनुभव प्राप्त हो जाता है, जो फुटबालको, खिलाड़ियोके पैरोका।

रिक्शेवाले ज़रा 'तबीयतदार' होते है। उनकी यह 'तबीयतदारी' ढालदार सड़कोपर देखनेमे आती है। सवारीके साथ ही रिक्शे और अपने शरीरकी 'मरम्मत' करवानेमें वह 'गौरव'का अनुभव करता है।

आजकल रिक्शोमे भी दो क्वालिटी दीख पड़ती है। 'टैक्सी' और 'टरकाऊ'! टैक्सी उसे कहते है, जिनकी गद्दी और ढाचेमें 'आधुनिकता' घुसी रहती है और 'टरकाऊ', वही 'बाबाआदमी'! स्पष्ट है, 'टरकाऊ', 'टैक्सी'के समक्ष 'फीका' मालूम होगा।

बनारसमें टैक्सियॉ इफरात है, पर उनका किराया बम्बई-कलकत्ताके टैक्सियोसे २० गुना अधिक है। सारनाथ, रामनगर और विश्व विद्यालय-के दर्शनके लिए इनका उपयोग किया जाता है, पर आश्चर्य होता है कि इतना किराया क्यो? क्या इसमे भी गहरेबाजी होती है? गोकि टैक्सियोकी पूछ विवाह आदिके मौकेपर ही अधिक होती है।

सरकारी बसें

अभी हालसे बनारसमे बसे चलने लगी हैं। अब इसे बनारसमे यातायातके लिए प्रमुख यान मान लिया है। एक तरहसे इसे रिक्शोका 'इन्लार्जमेण्ट' कहा जा सकता है। रिक्शोमे एक सहूलियत यह है कि उसपर माल लादकर स्वयं बैठ जाइये। आपको माल ढुलाईका किराया नहीं देना पड़ेगा—बसोमे देना पड़ता है। बनारसकी बसोमे दो—एक नहीं, बहुत सी विशेषताऐं हैं। मसलन यहॉकी बसे अन्य बड़े शहरोकी भॉति नहीं है जो केवल स्टापेजोपर खड़ी होती है, जितनी सीट रहेगी उतनी सवारी लेगे। यहॉ यह सब नियम नहीं है। बस कण्डक्टर अधिकसे अधिक सवारी लेनेका प्रयत्न करता है, आखिर सभीको जानेकी जल्दी रहती है। नाहक परेशान होगा। इस मानेमें कण्डक्टर बड़ा

दयालु होता है। जब जहाँ जी चाहा, गाडी आपके सामने खड़ी हो जायगी। अगर आपका घर या दफ्तर दो स्टापेजोंके बीच है तो कण्डक्टरसे कह दीजिये, वह आपको दरवाजेपर उतार देगा। यहाँ ड्राइवर और कण्डक्टर दोनो ही बड़े उदार, सज्जन और मानवतावादी हैं। बशर्तें उनकी गाड़ी लेट न हो अथवा ड्राइवर साहबका मूड बिगड़ा हुआ न हो। अगर गाड़ी लेट है और आपको जिस स्टापेज पर उतरना है, अगर आप जरा चूक गये तो तीसरे स्टापेजपर आपको उतार दिया जायगा। अगर ड्राइवर साहबकी मूड खराब है तो इस प्रकार मुँह बनायेंगे मानो महामुनि अष्टावक्रके वंशज है। साथ ही फर्मायेंगे—'यह सरकारी बस है—खालाजीका घर नहीं है। आपने इसे रिक्शा समझ लिया है कि जहाँ मनमे आया, रोकवा लेंगे।'

आप भले ही सोचते रह जाँय कि आखिर कल इसी ड्राइवरने मेरे कहने पर यहाँ गाड़ी रोकी थी—आज इसे क्या हो गया। इसे अपना—अपना 'मूड' कहते है—भाई साहब!

: बनारसी साँड़ :

'सॉड़' शब्दसे मेरा मतलब उस चौपाये से है, जिसे पूँछ तो रहती है, साथ ही त्रिशूलके फलकी तरह दो सीग भी है, जिन्हें बधिया नहीं बनाया जाता। नगरपालिकाकी कूड़ा गाड़ीको कौन कहे, बैलगाड़ी अथवा हलमें भी जो कभी जोते नहीं जा सकते। जो हर गली और हर सड़कपर मस्तीके साथ झूमते हुए चलते है। जिन्हे दायें-बायेकी कोई फ़िक्र नहीं रहती, जो दफा १४४, कर्फ्यू अथवा मार्शल लाके कानूनके पाबन्द नहीं है। 'यह सड़क मरम्मतके लिए बन्द है' 'यहॉ मल मूत्र करना मना है'—इन कानूनोंका उल्लंघन करना जिनका जन्मसिद्ध अधिकार है, ऐसे ही एक दर्शनीय जीवको हम सॉड़के नामसे सम्बोधन करते है।

सॉड़ एक ऐसी नस्लका, एक ऐसी कौमका और ऐसे निरीह किस्मका जानवर है जो हिन्दुस्तान और पाकिस्तानमे ही नहीं, बल्कि दुनियाके तमाम मुल्कोमें पाया जाता है। फर्क सिर्फ रंग और डील डौलका होता है। रूसी साँड़ चितकबरे और प्रकृतिके कम्युनिस्ट होते है, अमेरिकी सॉड़ बादामी रंगके पूँजीवादी टाइपके होते है, फ्रांसीसी जरा दुबले-पतले और नाज़ुक होते है। पाकिस्तानी सांड़ बुर्कापोश और हिन्दुस्तानी साड़ सफेद-पोश होते है। कहनेका मुख्य मतलब यह है कि जंगल और मैदानी इलाकोंमें हर जगह हर किस्मके सॉड़ पाये जाते हैं।

साँड़ोंकी नगरी

लेकिन दुनियामे पाये जानेवाले किसी भी स्थानसे कहीं अधिक साँड़ बनारसमे है। कम्युनिस्ट, पूँजीवादी, आतंकवादी, समाजवादी, गांधीवादी और सर्वहारा—सभी प्रकारके सांड़ यहाँ घूमते रहते हैं। कहा जाता है

कि तीन लोकमें एक ही सॉड़ था जिस पर बाबा विश्वनाथ सवारी करते थे। आजके जितने सॉड़ सारे संसारमे है, वे सब उसी सॉड़की औलाद है, जैसे आदमकी औलाद आदमी और मनुके पुत्र मनुष्य दुनियामे बिखर गये है।

काशी तीन लोकसे न्यारी है। वह शेषनागके फनपर अथवा शंकरके त्रिशूलपर स्थित है। चूँकि काशी बाबाकी राजधानी है, जाड़ेके दिनोमे वे यही रहते है, गर्मीमे पहाड़पर आबहवा बदलने चले जाते हैं, इसलिए यह जरूरी है कि साड़ अपने मालिकके राज्यमे काफी तायदादमें रहें, क्योकि जमाना तटस्थ रहते हुए भी गुर्राहट और हमलेकी आशंकासे भयभीत है। ऐसी हालतमें पता नहीं, कब किसकी और कितनी सख्यामें जरूरत पड़ जाय। यही कारण है कि काशीको अपना अस्तबल समझकर सॉड़ इतनी आजादीसे रहते है।

इसके अलावा काशीमें सॉड़ोकी अधिकता होनेका दूसरा कारण यह है कि कुछ लोग बगैर इनकम टैक्स, सेल टैक्स और सुपरटैक्स अदा किये बेरोक टोक शिवलोक जाना पसन्द करते है। मुमकिन है ऐसे ही शरीफोंके लिए तुलसीदासजीने काशीको मुक्ति, ज्ञानकी खान कहा है। हर तरहके जरायम याने, हत्या करनेके बाद भी आप काशीमे चले जाइए। यह निश्चित है कि आपको मुक्ति मिल ही जायगी, बशर्ते आप गोदान न कराकर अपने जीवित कालमें ही वृषोत्सर्ग करा दे अथवा अपने वारिसको चेतावनी दे दें कि गयामें पिंडदान, तेरहीका भोज, बर्सी और गोदान भले न करे, लेकिन वृषोत्सर्ग अवश्य कर दे। इससे आपको दोहरा पुण्य लाभ होता है। पहला यह कि वृषोत्सर्गसे शिवलोकका रास्ता खुल जाता है, यह शास्त्रीय मतसे पुण्य है। दूसरे एक बेचारे निरीह पशुको जिसे ये नर-पिशाच बधिया बनाकर आजीवन किसी हल या बैलगाड़ीके नीचे जोत देते हैं, उसे मुक्ति मिल जाती है।

कहा जाता है बनारस नगरपालिकाके किसी सदस्यने एकबार यह सुझाव दिया था कि काशीकी सडकोपर जो बहुतसे सॉड लावारिस घूमते है उनका उपयोग कूडागाडी खींचनेमे किया जाय। इसकी सूचना काशीके सॉडोको मिल गयी। एक दिन जब वे स्टेशनसे घर वापस आ रहे थे तब दो सॉड़ोने उनकी ऐसी खातिर की कि बेचारे महीनो अस्पतालमे पड़े रहे। इस घटनाके बाद किसी सदस्यने इन सॉड़ोके प्रति आक्षेप नही किया।

खैर, यह कहानी कहाँ तक सच है, कहा नही जा सकता। लेकिन यह स्पष्ट है कि नगरपालिका भूलकर भी कभी इनका उपयोग नहीं करती। दुनियाके तमाम चौपायोके लिए काजीहौजका दरवाजा खुला रहता है, लेकिन इन साड़ोके लिए खुला दरवाजा भी बन्द हो जाता है। अगर कहीं ऑख बचाकर चले भी गये तो मारकर भगा दिये जाते है।

दो-चार सॉड़ोको छोड़कर, जो ग्वालके खास है, बाकी सभी दगे हुए सॉड़ वास्तवमे बनारसी सॉड़ है। यों मनौती माननेवाले बकरेका भी कान काटकर छोड़ देते है। वृषोत्सर्ग किये सॉड़ोके पीठपर छोटा त्रिशूलवाला लोहा दाग कर छोड़ा जाता है। बकरा छोड़ देनेके बाद कुछ दिनोंतक इधर-उधर दिखाई देता है, फिर कहीं गायब हो जाता है। लेकिन सॉड़ोकी संख्या ज्यो-की त्यों बनी रहती है। बनारस यदि पाकिस्तानमें होता तो शायद सॉड़ोकी सख्या इतनी न होती।

साँड़ पूज्य हैं

काशीके सॉड़ोकी पूजा होती है। शिव-वाहन होनेके कारण ही वे पूज्य है। क्योंकि उनकी पीठपर कूबड़के रूपमें स्वयं शिवजी विराजमान रहते है। जो सॉड़ जितना मोटा होगा, उसका कुबड़ उतना ही बड़ा होगा। इन्सानको भले ही खानेको न मिले, लेकिन इन्हें फल, मीठा और फूल खिलाया जाता है। बाकायदे पॉव दबाये जाते है, नमस्कार

किया जाता है। जैसे किसी मन्त्रीसे काम निकालनेके लिए उनके प्रायवेट सेक्रेटरीकी खातिर की जाती है। ठीक उसी प्रकार शिव भक्तिका प्रदर्शन सांड़ोंके जरिये किया जाता है।

कुछ ऐसे भी सॉड़ है जो भोजन न पानेपर किसी सट्टीमें घुस जाते है, भर पेट न सही, भर मुँह अवश्य खा लेते है। खोमचों वालोंका थाल उलट देना, किसी होटलवालेके यहाँ मेहमान बन जाना मामूली बात है। मजा यह कि इतना होनेके बावजूद इन्हें सजा नहीं दी जाती।

पाकिस्तानके निर्माता

बनारसमें अबतक जितने भी दंगे हुए उन सबकी मूलमे इन साडोका ही हाथ रहा। चौकमें या अन्य कही दो सॉड़ आपसमे जुट गये, बस भगदड़ मच गयी और यह अफवाह फैल गयी कि चल गयी यानी दंगा शुरू हो गया। फिर झटपट दुकान बन्द, भगदड और इसी बीच किसी गुंडेने किसीके पेटमे कुछ भोक दिया तो सवेरे नमक मिर्च मिलाकर लोगोकी जबान चल गयी और समाचार पत्रोंमे घटना छप गयी।

राम राज्य परिषदके एक सदस्यसे मैने पूछा, क्यो साहब ! आप लोग गोबध बन्दी आन्दोलन चला रहे है, ठीक है। लेकिन सॉड़ रक्षक आन्दोलन क्यों नही चलाते ? अगर सॉड़ नहीं रहेंगे तो गायोंकी संख्या कैसे बढ़ेगी, आप दूध, दही, मक्खन कैसे खायेंगे ?

उन्होंने फरमाया हम इस आन्दोलनमें साड़ोकी वकालत इसलिए नहीं कर रहे हैं कि वे दरअसल गद्दार हैं, इतिहासके कलक है। बनारसमें ही नहीं, विभिन्न नगरोमे हुए दंगोंके मूल जन्मदाता यही है। यदि ये दंगे न होते तो आज भारत अखंड बना रहता और पाकिस्तान बननेकी नौबत न आती। पर हकीकत यह है कि ये पाकिस्तानके मित्र है। यहाँ मुफ्तका माल खाकर मोटे हो रहे हैं।

गौरैया शाही

गौरैया शाही काशीकी एक अद्भुत घटना है। सन् १८५२में काशीमे फाटक बन्दी तोड़नेका हुक्म जारी हुआ, उन्हीं दिनो वृषोत्सर्ग किये गये साँड़ पकड़ कमसरियट पहुँचानेका भी हुक्म जारी हुआ। जनताने इसका विरोध करना शुरू किया। इनके तत्कालीन अगुआ भाऊ जानी तथा वीरेश्वर जानी थे। इसका खास कारण था। उन दिनो गुजरात, काठियावाड़ तथा अन्य स्थानोके आस्तिक हिन्दू अपने पितरोके नाम जो साँड 'वृषोत्सर्ग' करके छोडते थे, उनके भूसेके लिए कुछ वार्षिक भेजा करते थे। उक्त सारी रकम वीरेश्वर व भाऊ जानीके पास आती थी। इसीसे उन्होने साँड़ोंको कमसरियट पहुँचानेका विरोध किया, लेकिन इस विरोधका कोई असर नहीं हुआ। तत्कालीन कलक्टर श्री ग्राविन्सने जनताके प्रतिनिधियोंको नाटी इमलीपर एकत्र किया, परन्तु समझौता नहीं हो सका। इतनेमे ही जनता कुम्हारकी दुकानसे गौरैया उठा-उठाकर कलक्टर और पं० गोकुलचन्द कोतवालपर फेकने लगी। कई अफसर इसी हुरदंगमे घायल हो गये। इसी काण्डको 'गौरैया शाही' कहते है। नतीजा यह हुआ कि फाटक बन्दी तो तोड़ दी गयी, लेकिन दगे साँड़ोका पकड़ा जाना रोक दिया गया।

बेताजके बादशाह

बुलबुलकी लड़ाई, तीतर, बटेर, मुर्गकी लड़ाई आपने देखी होगी मेढ़ा, भैस, बिल्ली और कुत्तोकी लड़ाई भी आपने देखी होगी। इनके लड़नेका समय और स्थान होता है, पर साँडोंकी लड़ाईमे न समय देखा जाता है और न बाजी लगायी जाती है। जब जी चाहा और जहाँ तबियत हुई लड़ पड़े। यह आपकी शराफत है कि आप बगल हट जाते है और अपनी दूकान समेट लेते है।

जब किसी साँड़को लड़नेकी इच्छा होती है तब वह गधेकी तरह चिल्लाता नहीं। एक मनोवैज्ञानिकने लिखा है कि गधे हर घंटेपर इस तरह चिल्लाते हैं कि जनताको समयका अन्दाज लग जाय। लेकिन साँड़ उस समय गरजेगा जब उसका सिर खुजलायेगा। किसी गलीकी मोड़पर आकर गरज उठेगा अर्थात् है कोई लड़ने वाला? अगर उस गलीमें कोई हुआ तो एकबार निगाह उठाकर गरजनेवालेकी ओर देखेगा। अगर वह यह समझ जाता है कि मै इसे पछाड़ दूँगा तो वह विपक्षीसे भी तेज आवाजमे गरज उठेगा—'आओ बेटा, एक हाथ हो जाय'। वर्ना चुपचाप चल देगा। कभी-कभी दो साँड़ सडकके दोनो ओरसे केवल फुंकारते हुए गुजर जाते है, दोनो ही एक दूसरेको पहलवान समझते है, लेकिन एक दूसरेकी बेइज्जती करना नहीं चाहते।

अगर लड़नेकी इच्छा हुई तो एकबार फुत्कारा और खटाकसे, जैसे दो प्रेमियोंकी आँखे या दिल आपसमे टकरा जाते है, इसके बाद आगे-पीछे खिसकते रहते है, उस समय सारा आवागमन रुक जाता है। यदि कोई साँड कमजोर होता है और भागनेकी फिक्रमे रहता है तो दूसरा ज्यो ही यह भाप लेता है त्योंही जहाँ मौका मिला सींगसे मारना शुरू कर देता है। अगर उस समय 'हुर्र छे' की आवाज हुई तो कायर साँड़ भी शेर बन जाते है। इस तरह इनकी लड़ाई केचुये-सी लसड-पसड चलती रहती है और तबतक चलती है जबतक कि दोनों लोहू-लुहान न हो जायँ। बहादुरी और जिन्दादिलीके ये जीते-जागते प्रतीक है।

पता नहीं, किस दिलजलेने 'राँड़, साँड, सीढ़ी, संन्यासी' के तुकमे इनका नाम जोड़ दिया। आज अगर 'दास मलूका' जीवित होते तो उन्हें यह पद्य फिरसे इस तरह लिखना पड़ता—

अजगर करे न चाकरी साँड करे नहि काम।
दास मलूका कह गये सबके दाता राम॥

: बनारसी पान :

बनारसी पान सारे संसारमे प्रसिद्ध है। बनारसमे पानकी खेती नही होती। फिर भी बनारसी बीडोकी महत्ता सभी स्वीकार करते है। लगभग सभी किस्मोके पान यहॉ, जगन्नाथजी, गया और कलकत्ता आदि स्थानोसे आते है। पानका जितना बडा व्यवसायिक केन्द्र बनारस है, शायद उतना बडा केन्द्र विश्वका कोई नगर नहीं है। काशीमे इसी व्यवसायके नामपर दो मुहल्ले बसे हुए है। सुबह ७ बजेसे लेकर ११ बजे तक इन बाजारोमे चहल-पहल रहती है। केवल शहरके पान विक्रेता ही नहीं, बल्कि दूसरे शहरोके विक्रेता भी इस समय इस जगह पान खरीदने आते है। यहॉसे पान 'कमाकर' विभिन्न शहरोमे भेजा जाता है। 'कमाना' एक बहुत ही परिश्रमपूर्ण कार्य है—जिसे पानका व्यवसायी और उसके घरकी महिलाऍ करती है, यही 'कमाने' की क्रिया ही बनारसी पानकी ख्यातिका कारण है। इस समय भी बनारसमे दस हजारसे अधिक पुरुष और स्त्रियॉ 'कमाने' का कार्य करती है। कमानेका महत्त्व इसीसे समझा जा सकता है कि इस समय जो पान बाजारमे हरी देशी पत्तीके नामपर चालू है, उसे ही लोग एक सालतक पकाते हुए उसकी ताजगी बनाये रखते है। ऐसे पानोको 'मगही' कहा जाता है। मगही जब सस्ता होता है तब पैसे बीडा मिलता है, लेकिन जब धीरे धीरे स्टाक समाप्त होने लगता है तब चार आने बीडा तक दाम देनेपर प्राप्त नहीं होता।

यो बनारसी जनता मगही पानके आगे अन्य पानको 'घास' या 'बड़का पत्ता' संज्ञा देती है, किन्तु मगहीके अभावमे उसे जगन्नाथी पानका आश्रय लेना पड़ता है, अन्यथा प्रत्येक बनारसी मगही पान खाता है। इसके अलावा साची-कपूरी या बंगला पानकी खपत यहॉ नाम मात्रकी होती

है। 'बंगला पान' बंगाली और मुसलमान ही अधिक खाते है। मगही पान इसलिए अधिक पसन्द किया जाता है कि वह मुँहमे जाते ही घुल जाता है।

पान खानेकी सफाई

बनारसके अलावा अन्य जगह पान खाया जाता है, लेकिन बनारसी पान खाते नही, घुलाते है। पान घुलाना साधारण क्रिया नही है। पानका घुलाना एक प्रकारसे यौगिक क्रिया है। यह क्रिया केवल असली बनारसियो द्वारा ही सम्पन्न होती है। साधारण व्यक्ति इस कष्ट साध्य अभ्यासको अपना नहीं पाते। पान मुँहमे रखकर लारको इकट्ठा किया जाता है और यही लार जबतक मुँहमें भरी रहती है, पान घुलता है। कुछ लोग उसे नाश्तेकी तरह चबा जाते है, जो पान घुलानेकी श्रेणीमें नहीं आता। पानकी पहली पीक फेंक दी जाती है ताकि सुर्तीकी निकोटिन निकल जाय। इसके बाद घुलानेकी क्रिया शुरू होती है। अगर आप किसी बनारसीका मुँह फूला हुआ देख ले तो समझ जाइए कि वह इस समय पान घुला रहा है। पान घुलाते समय वह बात करना पसन्द नहीं करता। अगर बात करना जरूरी हो जाय तो आसमानकी ओर मुँह करके आपसे बात करेगा ताकि पानका, जो 'चौचक जम गया होता है, मजा किरकिरा न हो जाय। शायद ही ऐसा कोई बनारसी होगा जिसके रूमालसे लेकर पायजामेतक पानकी पीकसे रंगे न हो। गलियोमे बने मकान कमर तक पानकी पीकसे रंगीन बने रहते है। सिर्फ इसी उदाहरणसे स्पष्ट है कि बनारसी पानसे कितना पुरदर्द मुहब्बत करते है। भोजनके बाद तो सभी पान खाते है, लेकिन कुछ बनारसी पान जमाकर निपटने (शौच करने) जाते है, कुछ साहित्यिक पान जमाकर लिखना शुरू करते है और कुछ लोग दिन-रात गालमे पान दबाकर रखते है।

बनारसी पानका महत्व

बनारसी पानका खास महत्व यद्यपि उसके कमानेसे संबंधित है तथापि बनारसी पानमें व्यवहृत होनेवाली सामग्रियोंका भी कम महत्व नहीं है। यद्यपि इन्हीं सामग्रियोसे देशके प्रत्येक कोनेमे पान लगाया जाता है, तथापि बनारसी पान विक्रेता उसमें अपनी मौलिकता दे देता है। हर पानको लगानेके पहले खूब साफ कर लिया जाता है, फिर गीले कपड़ेसे रगड़ लिया जाता है ताकि गर्दके कारण किरकिराहट उसमे न रहे। सुपारी चौकोर आकारकी काटी जाती है, ताकि वह दाँतमे न फँसे। पहले सुपारी काटकर पानीमें भिगो दिया जाता है जिससे उसका कसैलापन दूर हो जाय। इसके बाद भीगी हुई सुपारी प्रयोगमे लाते है। कड़ापन न रहनेसे यह सुपारी मगही या अन्य पानके साथ तुरन्त घुल जाती है।

बनारसी पानमे कत्था विशेष ढगसे बनाकर प्रयोग किया जाता है। पहले कत्थेको पानीमे भिगो देते है। अगर उसका रग अधिक काला हुआ तो उसे दूधमे भिगोते हे। फिर उसे पकाकर एक चौडे बर्तनमे फैला दिया जाता है। कुछ घण्टे बाद जब कत्था जम जाता है तब उसे एक मोटे कपड़ेमे बाँधकर सिल या जाता जैसे वजनी पत्थरके नीचे दबा देते है। इससे कसैलापन और गरमी निकल जाती है। इसके पश्चात् सोधापन लाने तथा बाकी कसैलापन निकालनेके लिए उसे गरम राखमे दबा दिया जाता है। इतना करनेपर वह कत्था थक्का सा हो जाता है। उसका रंग काफी सफेद हो जाता है। कत्थेके इस थक्केमे पानी मिलाकर खूब घोटकर और इत्र-गुलाब जल आदि मिलाकर तब पानमे लगाया जाता है। इस तरहसे बनाया हुआ कत्था बनारसी पानकी जान है।

बनारसी पानमे जिस प्रकार कत्था-सुपारी अपने ढंगकी होती है, उसी प्रकार चूना भी। ताजा चूना यहाँ कभी प्रयोगमें नहीं लाते। पहले चूने-

को लाकर पानीमे बुझा दिया जाता है, फिर तीन-चार दिन बाद उसे खूब घोटकर कपडेसे छान लिया जाता है। इससे चूनेके सारे कंकड वगैरह छन जाते है। छने हुए चूनेका पानी जब बैठ जाता है तब उसके नीचेका चूना काममे लाया जाता है। यदि चूना तेज रहता है तो उसमें दूध या दहीका पानी मिलाकर उसकी गरमी निकाल दी जाती है।

पानकी दूकानकी मर्यादा

बनारसमे पानकी हजारो दूकाने हैं। इसके अलावा 'डलिया'मे बेचनेवालोकी संख्या कम नही है। प्रत्येक चार दूकान या चार मकानके बाद आपको पानकी दूकाने मिलेगी। महालके मकानो, गलियो और सारे शहरकी सडकोपर पानकी पीककी मानो होली खेली जाती है। पानमे इतनी सफाई रहनेके बावजूद पान खानेवाले शहरको गन्दा किये रहते है। वैसे यहाँका दूकानदार अपनी दूकानमे किसी किस्मकी गन्दगी रखना पसन्द नही करता। सिवाय अपने हाथ और कपड़ोको कत्थेके रगसे रंगकर रखनेके, वह सभी सामान खूब साफ रखता है। आदमकद शीशा कत्थेका बर्तन, चूनेकी कटोरी, सुपारीका बर्तन और पीतलकी चौकी माज-धोकर वह इतना साफ रखता है कि बड़े-बड़े कर्मकाण्डी पण्डितके पानी पीनेका गिलास भी उतना नहीं चमक सकता।

याद रखिये कोई भी बनारसी पान विक्रेता अपने पानकी दूकानकी चौकीपर हाथ लगाने नहीं देगा और न लखनऊ, दिल्ली, कानपुर, आगराकी तरह चूना माँगनेपर चौकीपर चूना लगा देगा कि आप उसमेसे उँगली लगाकर चाट लें। आप सुर्ती खाते हैं तो आपको अलगसे सुर्ती देगा—यह नही कि जर्दा पूछा और अपनी इच्छाके अनुसार जर्दा छोड दिया। यहाँ तक कि चूना भी आपको अलगसे देगा। आप उसकी दूकान छू दे, यह उसे कत्तई पसन्द नही, चाहे आप कितने बडे अधिकारी क्यो न हो। आपको पान खाना है, पैसा चौकीपर फेंकिए, वह आपके

लिए दिल्ली, लखनऊकी तरह पहलेसे पानमे चूना-खैर लगाकर नहीं रख छोड़ता। आपकी मागके अनुसार वह तुरन्त लगाकर आपको पान देगा। कुछ जगहोंपर पहले चूना लगाकर उसपर कत्था लगाते है। बनारसमे यह नियम नही है। इससे पान जल जाता है और पूरा स्वाद नही मिलता। यहाँ चूनेको थोड़ासा एक कोनेमें लगा देते है। प्रत्येक बनारसी पीली सुर्ती या इधर नयी चली सादी सुर्ती खाना अधिक पसन्द करता है; काली सुर्तीसे उसे बेहद चिढ़ है। पीली सुर्ती तेजाबी होनेके कारण सेहतको नुकसान पहुँचाती है, इसीलिए इधर सादी सुर्तीका प्रचलन हुआ है। सादी सुर्तीको पहले पानीसे खूब धो लेते है और सारा गर्द-गुबार साफ कर लेनेके बाद उसमे बराश, छोटी इलायची, पिपरमिण्टके चूर तथा गुलाबजल मिलाकर बनाया जाता है। सादी सुर्तीमे सबसे बड़ी खूबी यह है कि अधिक खा लेने पर भी चक्कर नही देती।

अगर रहे तो ठीक रहता है, क्योंकि परिवारमे केंची-पेंची और रेजगारियाँ (बच्चे) भी सम्मिलित रहते है। लेकिन एक बनारसी पिकनिकमें अधिक व्यक्तियोको सम्मिलित भी नहीं करना चाहता। उसके शब्दोमे 'भउसा' हो जाता है। अन्य पार्टी या भोजकी तरह बनारसी पिकनिकमे मेजपर बना बनाया भोजन प्लेटमे परोसा हुआ नही मिलता। वहाँ जाने-वाले व्यक्ति 'भोजन' बनानेमे मेहनत करते है। इसलिए वहाँ जाकर अमुक वस्तु नही है, कहाँ मिलेगी—इस चिन्तासे मुक्त रहनेके लिए सभी आवश्यक सामान साथ ले जाते है। मेलाके अवसरपर हँडिया, पुरवा, पत्तल, गोहरा और मसाला आदिका टोटा पड जाता है तथा महँगा भी मिलता है। इसलिए कुछ लोग घरसे ये सामान भी ले जाते है—पर बहुत कम लोग ऐसा करते है। हाँ, कलछुल, बेलना, कड़ाही और पौना वगैरह ले जाते है। यह कोई जरूरी नहीं कि सभी लिट्टी-चुरमा खायँ। कोई पूडी-पोलाव भी खाता है तो कोई पकौड़ी भी तलता है। कहनेका मतलब जिसके मनमे जो आता है, वही बनाकर खाते है।

यह सारी तैयारियाँ कर घरसे चलते है। जब हुजूम चलता है तबकी छटा देखने लायक होती है। रंग-बिरंगी साड़ियाँ, सलवारे, साफा, दुपट्टा और घर-गृहस्थीका पूरा डेरा रिक्शे, ताँगे और एक्केपर चलते है। घोड़ों-की टापोसे सडक कॉप उठती है और मीलोतक सडक गुञ्जायमान हो उठती है। लगता है, जैसे दिल्लीसे राजधानी दौलताबाद बसने जा रही है। सम्भवतः आपको विश्वास न हो इसलिए आपको लगे हाथ एक उदाहरण दे दूँ। आजसे १५० वर्ष पूर्व महाराज जयनारायण घोषाल काशी आये थे। बनारसियोके अलमस्त जीवनका वर्णन उन्होंने जिस ढङ्गसे किया है उसे पढ़नेके पश्चात् बनारसियोके पिकनिक और जन-समारोहके शौकका पता चल जाता है—

नगरेर जत लोक करिया भोजन,
दुर्गायात्रा हेतु सभे करेन गमन।

केहो पालकी चढ़े केहो रथे जाय ,
केहो गज, केहो बाजी, जारे जेई भाय ।
पद ब्रजे असंख्य लोकेर आगमन ,
गले गुल्फे बाहुते बिजटा आभरण ।
शिरे पाग गोलाबी, कुसुमी गोलेलार ,
शोषणि हरि रंग जतेक प्रकार ।
कदाचित सादा पाग काहारो माथाय ,
अङ्ग भङ्ग रङ्ग सङ्ग युवाजन जाय ।
चौड़ा लाल किनारीर धूति केहो परि ,
रेशमी किर्म्मिजी धूति जरीर किनारी ।
नाना रंगे किमखाब फुलाम मसरू ,
केहो बागलता गोल बदन अमरू ।
कत शत जरिर उडानि देखि गाय ,
एईमत सारि-सारि सर्वलोक जाय ।
कि लिखि शोभार कथा लय मम मने ,
जे मत फुटिलो फूल आनन्द कानने ।

इसके बाद निश्चित जगह जाकर स्थान तजवीजते है। जहाँ पासमें पानीकी सुविधा हो, वही डेरा जमाते है ।

पिकनिकके बहार

डेरा जम जानेके बाद गोहरा, हडियाका इन्तजाम कर चूल्हा सुलगाकर उसपर अलग-अलग सामान बैठा दिया जाता है। भात, दाल, तरकारी, खिचड़ी, लिट्टी, पोलाव, पकौड़ी और पूडी बनायी जाती है। कोई पानी ला रहा है, कोई मसाला पीस रहा है, कोई चावल बीन रहा है, कोई तरकारी छील रहा है और कोई साफा लगा रहा है। इन पिकनिकोंमे साफा लगाना और भॉग छानना प्रधान कार्य माना जाता है। उधर हडियेमें

खदबद कर भोजन तैयार हो रहा है; इधर गुरू लोग भाँग काट रहे है, साफा लगा रहे है। साबुनकी पूरी बट्टी एक ही धोतीपर घिस जाती है। पेड़के हर तनेपर सफेद धोतियाँ टँग जाती है। लगता है—जैसे धोबी घाट है। बनारसी साफा लगानेमे अपनी शान समझते है—भले वह धोती कल ही धोबीके घरसे क्यों न आयी हो, भाँग तो बाबाका प्रसाद है—नशा नहीं।

आँखोमें गुलाबी डोर खींचे खेतोमें निपटने चले जाते है, फिर स्नान कर दिव्य हो, भोजनपर आ जुटते है। नंग-धड़ंग बदन और बाँहोकी गुल्लियाँ कसरती बनारसीका रंग उभार देती है। भोजनके पश्चात् साफा लगाये हुए कपड़ोंको पहनकर मन्दिरोमें या दर्शनीय स्थलोको देखने चल पड़ते है। 'आगे आत्मा पीछे परमात्मा' कहावत यहीं लागू होती है। इसके बाद शामतक यह काफिला घर लौटता है। इसे कहते है बनारसी पिकनिक। जहाँ मनकी ही नहीं, तनकी भी आजादी रहती है। है दुनियाके किसी परदेमे ऐसी आजादी?

: यह है बनारस ! :

अधिकतर लोगोका विश्वास है कि विज्ञापन आधुनिक युगकी देन है। यह बात बिलकुल बेबुनियाद और बेमतलबकी है। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है—काशी नगरीकी स्थापना।

आजसे पचास वर्ष पहले जिन क्षेत्रोमे शङ्करके गण और लक्ष्मीके वाहन रहते थे, अब वहाँ आदमकी औलादोके लिए भी जगह नहीं। दो आनेपर कमरा और दो रुपये प्रति माह किरायेपर डाक बॅगला मारे-मारे फिरते थे। आज यह हालत है कि कुँवारोकी कौन कहे डबल बीबियोंके रहते हुए भी अस्तबलतक खाली नही मिलता। ऐसी हालतमे आप कल्पना कर सकते है कि प्राचीन कालमें यह उजाड़ खण्ड नगरी बिना विज्ञापन किये बस गयी ?

जिस नगरीमे शंकरके गण रहते थे, उसे बसानेमे उन्हें छठीका दूध याद आ गया होगा। दूर क्यो, लार्ड विलियम बेण्टिकके जमानेमें भी यहाँ डकैतियाँ हुआ करती थी।

यही वजह है कि राजा काश्यने बड़े तिकड़मसे इस नगरीकी स्थापना की वर्ना इसका नाम काशी नगरी कभी न होता। सबसे पहले उन्होने भारतवर्षमें ऋषि-मुनियोको भेजकर यह प्रचारित करवाया कि काशी 'अवि-मुक्त क्षेत्र' है, यहाँ मरनेपर सीधे शिवलोकका सार्टिफिकेट मिल जाता है, यकीन न हो तो यहाँ बसकर देखो। इस प्रचारसे यह लाभ हुआ कि कुछ लोग काशी आये और बस गये। धीरे-धीरे यह प्रचार बढ़ता ही गया। उसका नतीजा यह हुआ कि जो लोग मरकर सीधे शिवलोककी सैर करना चाहते थे, यहाँ आकर बसने लगे।

लेकिन इसमें एक दिक्कत यह हुई कि काशी नगरी महाश्मशान बनती गयी। बसानेका उद्देश्य विफल ही रहा। सारा शहर हरवक्त भॉय-भॉय करता रहा। जिन लोगोंका, यमराजके यहॉसे परवाना देरमे आने वाला था, वे इस वातावरणमे घबरा गये। आखिर उन लोगोंने एक तिकडम किया, जिससे वे लोग जो अपने साथ हैजा, प्लेग, महामारी और चेचकके कीटाणु लेकर यहॉ मरने आये थे, चंगे होने लगे। इस प्रकार शहरकी मृत्यु संख्या घटने लगी और बनारस बसता गया।

तिकड़म

अब सवाल है—वह तिकडम था क्या? आधुनिक युगके कोट-पैण्ट-वाले उसे अन्धविश्वास कहते है और बनारसी भाषामें 'चलउआ', 'टोटका', 'धार' और 'गॉव गोठाई' आदि क्रिया।

अगर किसी मुहल्लेमें हैजा-चेचक जैसी बीमारियोंके पधारनेकी आशंका है तो फौरन भाई लोग चन्दा करते है और मुहल्लेकी त्रिमुहानीपर [जहॉ पीपल या नीमका वृक्ष जरूर रहे] अथवा चौरा माई किम्वा कोई देवता रहते है; वहॉ लगातार कई दिनोतक होम होता है; मुहल्लेकी औरते लोटेमे पानी लेकर सारे मुहल्लेका चक्कर लगाकर उसकी रक्षाका कार्यकर देती है। जिस प्रकार खरदूषणको मारनेके लिए जब भगवान् रामके बाद लक्ष्मण भी जाने लगे तब उन्होने सीताजीकी कुटियाके दरवाजेपर धनुपसे एक लकीर खीचकर कहा था कि हे देवि, इस लकीरके बाहर मत आना। इसके भीतर सिवाय बड़े भइयाके और कोई नहीं जा सकता। ठीक उसी प्रकार मुहल्लेकी गोठाईसे कोई भी बीमारी उस परिधिको पारकर भीतर नही जा पाती।

अगर आपके मुहल्लेमे चेचक-हैजा जैसी कोई खतरनाक बीमारी आ गयी है तो फौरन 'चलउवा' निकलवा दीजिये। आपके मुहल्लेकी बीमारी तुरत दूसरे मुहल्लेमें 'ट्रांसफर' हो जायगी। लेकिन यह काम जरा सावधानीसे

करना पड़ता है वर्ना सिर्फ आपकी नहीं, मुहल्लेवालो की लाशें सड़कपर मछलीकी भाँति छटपटाती हुई दिखाई देगी।

आज भी जब किसी मुहल्लेमें ऐसी बीमारियोंकी दो-चार घटनाएँ लगातार होती है तब लोग तुरत सजग हो जाते है। रात भर पहरेदारीका कार्य चलता है। नगरपालिकाकी स्ट्रीट लाइटके अलावा हर घरके दरवाजे-पर लालटेन अथवा बिजलीके बल्ब रात भर जलते रहते है। हर गलीके नुक्कडपर भाई लोग सेगरी लेकर पहरा देते है। अगर कोई भी संदिग्ध आदमी गठरी लिए दीख गया तो खैरियत नही। रात भर 'कहाँ जाला सरवा, जाय न पावे, धर सारेके' आदि आवाजे आती है। बच्चोको शामके पहले ही खाना खिलाकर सुला दिया जाता है, ताकि वे 'हदस' (डर) न जायँ। गृहणियाँ भयके कारण कॉपती रहती है, पर देवर लोग समझाते रहते है—'भउजी, तू डरा जिन—बेखटके सूता। हम लोगनके रहते, कौन सरवा चलउवा लेके आई। बिछाके रख देब सारन के।'

कभी-कभी ऐसा होता है कि दूसरे मुहल्लेवाले अपनी आफत जब चलउवाके जरिये पड़ोसके मुहल्लेमे रख जाते है तब इसका पता ओझाईके जरिये लगाया जाता है। ओझाईके जरिये सिर्फ उस व्यक्तिका नाम ही नहीं ज्ञात होता, बल्कि और भी अनेक रहस्य ज्ञात हो जाते है। जो व्यक्ति इस क्रियाको जानता है, उसका मुहल्लेमे बडा सम्मान किया जाता है। ओझाईकी एक प्रक्रियाको 'हबुआना' भी कहा जाता है। किस व्यक्तिके कारण मुहल्लेवालोंके ऊपर यह आफत आयी इस बातका पता भले ही ज्योतिषीगण न बता सके, सी० आई० डी० वाले फेल हो जायँ, पर ओझाईके जरिये जरूर पता लग जाता है। सिर्फ यही नही, बल्कि इसका निराकरण कैसे होगा इस बातका पता भी लग जाता है। यही वजह है कि इस क्रियापर अधिक विश्वास किया जाता है।

पता नहीं, इन क्रियाओंसे कुछ लाभ होता है या नहीं, पर ऐसी घट-नाएँ प्रत्येक वर्ष शहरके विभिन्न अन्चलोमे होती है। जहाँ बडे-बडे डाक्टर,

हकीम और वैद्य फेल हो रहे हो, वहाँ चलउआ—ओझाई रामबाण ही नहीं 'दशरथ-बाण' की तरह असर करता है। उताराके जरिये रोगीकी बीमारी तुरन्त ट्रासफर कर दी जाती है। किसी भी त्रिमुहानीपर रकसवा कोहड़ा, कागजकी पालकी, पान, सुपारी, फूल, माला, बतासा और पञ्चमेवा रख दिया जाता है। कहीं-कहीं बकरीका बच्चा बाँध दिया जाता है। अगर किसीको मालूम हो जाय कि अमुक त्रिमुहानीपर उतारा रखा हुआ है तो वह भूलकर भी उधरसे घर नहीं जायगा। लोगोका ऐसा विश्वास है कि जो व्यक्ति पहले-पहल 'उतारा' लाघता है 'उतारे' का प्रभाव उसपर पडता है। इसीलिए हर व्यक्ति यही सोचता है कि सम्भवतः मै ही पहला व्यक्ति हूँ। उतारा-चलउवाके नामपर आज भी बड़े-बड़े महारथी दहल जाते हैं। उतारा रखते वक्त पीछे मुड़कर नही देखा जाता और रखते वक्त टोक-टाक करनेपर उसका असर नहीं होता। यही वजह है कि यह काम चुप-चाप होता है।

उतारा और चलउवासे कुछ हो या न हो, पर एक क्रिया है—'बान चलाना' उससे कितनोको मरते देखा गया है। टोटका विज्ञानके अन्वेषकोको चाहिए कि इस विद्याके रहस्यसे साधारण जनोंका परिचय करायें। आजके स्पुतनिक युगमे नकली ग्रहकी तरह आसमानमे हड़िया चलते देखा गया है और वह जहाँ गिरा है, वहाँ किसीको ले बीता है अर्थात् जिसके नामपर चला उसकी मौत निश्चित है।

कुछ अन्य प्रथाएँ

चलउआ और उताराके अलावा बनारसमें कुछ ऐसे रहस्य भी है जो उनके अपने है। मुमकिन है, वैसे दृश्य आपको अन्यत्र कही न दीखें। इन रस्मोको बनारसवालोने इस तरह अपना लिया है मानो वैसे उनकी यही सस्कृति हो।

उदाहरणके लिए गंगा पुजइया। बनारसके अलावा अन्यत्र कही यह प्रथा शायद ही देखनेमें आती हो। विवाहके पश्चात् जब बहू ससुराल आती है तब मुहल्ले भरकी औरतें वर-वधूको सजाकर घरसे गगा घाट तक बाजे-गाजेके साथ, 'सोनेकी थालीमे जेवना परोसो' गाती हुई चलती है। उस समय बेचारे दूल्हेकी हालतपर तरस आता है। मुझे अच्छी तरह याद है कि हजार विरोध करनेपर भी मेरे कतिपय मित्रोको गगा पुजइयामे जाना पडा था। उनकी नजरे शर्मसे ऊपर नही उठती थीं। जब वे घर आये तब यही कहा कि भगवान करे कोई विवाह न करे, अगर करे तो गंगा पुजइयामे न जाय।

अक्सर बनारसमे आपने कुछ लोगोकी जमीनमे लेटते तथा निशान लगाकर पुनः उसी जगहसे आगे लेटते देखा होगा, यह शयन परिक्रमा है। इससे पुण्य लाभ होता है।

इसी तरहका एक दूसरा दृश्य है—गया दर्शनका प्रदर्शन। आधुनिक युगके लोग जब रूस, चीन आदि देख आते है तब पत्रकार गोष्ठीमे अथवा 'बार एसोसियेशन'मे उनका भाषण होता है, ठीक उसी प्रकार जब कोई दम्पति 'गया' दर्शन कर आता है तब वे लाल रगकी धोती पहने, कन्धेपर एक बासकी लकडी रखे और हाथमे एक लोटा पानी लेकर छिडकते हुए चलते है। जो लोग इस प्रथाके बारेमे नही जानते, अक्सर ऐसा दृश्य देखनेपर चकित रह जाते है। कुछ लोग तो सोचते हैं कि बुढऊने इस उम्रमे दूसरी सगाई (विवाह) की है।

: बनारसकी ठगी :

इतिहास और धार्मिक ग्रन्थोके अध्ययनसे पता चलता है कि ठग विद्या आधुनिक युगकी देन नहीं है, वल्कि हमारी सभ्यता और सस्कृतिकी भॉति प्राचीन परम्पराकी एक कड़ी है। जिस प्रकार हम धर्म और सस्कृति-की रक्षा करते आ रहे है, ठीक उसी प्रकार इस कलाकी रक्षा करते आ रहे है।

प्राचीन कालमें इस कलाके बड़े-बड़े आचार्य हो चुके है। उन लोगो-की महती कृपाके कारण इस कलाका इतना विकास हुआ कि इसे 'कला' की सज्ञा देकर सम्मानित किया गया। यद्यपि इसकी गणना उपकलाओमे की गयी है, लेकिन इससे इसकी महत्तामें कोई कमी नहीं हुई। देव-दानव-से लेकर राक्षस और मानवतक बराबर सुविधानुसार इस कलाका उपयोग करते रहे। सम्भव है, प्राचीन कालमें इस विद्याके कई केन्द्र रहे हो, जहॉ-से प्रति वर्ष अनेक स्नातक डिग्रियॉ लेकर जन-समुदायमें इस कलाका प्रदर्शन करते रहे। धीरे-धीरे कुछ लोगोंके लिए यह कला जीविकाका साधन बन गयी। इन लोगोको ही हम आधुनिक भाषामें 'ठग' कहते है।

प्राचीन आचार्य

इस विद्याके जन्मदाता कौन थे, इस विषयपर इतिहास ही नहीं, बल्कि धार्मिक ग्रन्थ भी मौन है। कुछ लोगोका कहना है कि इस कलाके जन्मदाता स्वयं चतुर्भुज भगवान् विष्णु थे, जिन्होने देवी वृन्दापर सर्व-प्रथम इस कलाका प्रदर्शन किया था। श्रीकृष्णने महाभारतमें, इन्द्रने कर्णके साथ और हनुमानने मेघनादके साथ जो ठगी की है, उसे सभी जानते है।

इस कलाके जन्मदाता भगवान् विष्णु भले ही रहे हो, पर इस कलाके प्रथम आचार्य शिव-पुत्र [कार्तिकेय] थे। काशी शिवकी नगरी है और शिवके ज्येष्ठ पुत्र इस कलाके सर्वप्रथम आचार्य हुए अर्थात् 'एक तो तितलौकी, दूसरे नीम चढ़ी' वाली कहावत हुई। इससे यह अन्दाज लगाया जाता है कि इस कलाका जन्म काशीमे ही हुआ था। काशीके लिए यह गौरवका विषय है कि यहाँके ठगोने प्राचीन युगकी इस कलाको लुप्त होनेसे बचा रखा है।

भारतका प्रामाणिक इतिहास उपलब्ध न होनेके कारण यह बताना मुश्किल है कि इस कलाके अबतक कितने आचार्य हो चुके है? उन्हें इस कलाकी शिक्षा किस केन्द्रसे प्राप्त हुई थी? इस कलाके कितने केन्द्र भारतमे थे? इस कलाके कितने अग थे? इस कलाके स्नातकोको कौन-सी उपाधि दी जाती थी? सबसे बड़ी दुःखकी बात यह है कि इस कलाके किसी आचार्यने मठ, मन्दिर, स्तूप तो क्या भोज-पत्र या ताम्रपत्र तक नहीं बनवाये। इससे यह विश्वास होता है कि उन दिनो इसे हीन-कार्य माना जाता था। भविष्यमे इतिहासके गड़े मुर्दे उखाड़नेवाले किसी विद्वान्का ध्यान इस अछूते विषयकी ओर अवश्य आकर्षित होगा।

'शिव पुत्रके बाद कनकशक्ति, भास्करनन्दी और मूलदेव आदि इस विद्याके आचार्य हुए है। संस्कृत साहित्यमे मूलदेव अधिक प्रसिद्ध हैं। कादम्बरी, अवन्तिसुन्दरी कथा और कथा विलास आदि ग्रन्थोंमें इनकी चर्चा है। मूलदेवका दूसरा नाम 'कर्णिसुत' था। इनके 'कर्णिसुत-सूत्र'का उल्लेख मिलता है, पर यह ग्रन्थ या इसके उद्धरणतक प्राप्य नहीं है।'

पौराणिक ठग

प्राचीन कालमे इस विद्याकी उत्पत्ति चाहे जहाँ हुई हो, पर आधुनिक युगमें इस कलाके सर्वश्रेष्ठ आचार्य काशीमें हो चुके हैं—ऐसा माना जाता है।

कहा जाता है कि पौराणिक युगमे एक ठगने श्रीकृष्णपर हाथकी सफाई दिखाई थी। ठग थे—तत्कालीन काशी नरेश—पौण्ड्रक। हजरत अपनेको भगवान् समझने लगे। बनारसके चार सौ बीस श्रेष्ठ कारीगरोंने जनाबको दो नकली हाथ बनाकर जोड दिये। देश देशान्तरोमे भगवान् रूपी चतुर्भुज काशी नरेशकी धूम मच गयी। भगवान् राधापतिकी 'प्रेक्टीज' पर गहरा धक्का लगा। पुराण चीख-चीख कर घोषित कर रहे है कि अपनी प्रेस्टीज' पर चूना लगानेवाले इस ठग काशी नरेशके लिए राधापतिको खड्ग हस्त होना पडा था।

आजके विद्वान् पुराणोकी ऐतिहासिकतामे सन्देह प्रकट करने लगे है, सो मारिये गोली। आजसे सौ वर्ष पूर्व ईस्ट इण्डिया कम्पनीको बनारसी ठगोसे खूब पाला पडा था। आधुनिक युगकी सबसे बडी ठगी 'रेशमी रूमाल ठगी'* को माना जाता है। यह ठगी मध्यभारतमे होती थी। उस ठगीका संचालन और रेशमी रूमालका निर्माण बनारसमे ही होता था। शायद इसीलिए लार्ड विलियम वेण्टिंकको इसे दबानेके लिए फौज भेजनी पड़ी थी।

इसमे सन्देह नहीं कि बनारसकी ठगी भी अपने आपमें ऐतिहासिक महत्व रखती है। धार्मिक नगरी होनेके कारण लोग यहाँ धर्मके नामपर

---

* कहा जाता है मध्यप्रदेशमें 'रूमाल ठगों' का एक गिरोह था। ये लोग रेशमीरूमालकी सहायतासे ठगी करते थे। जब इन्हें यह मालूम हो जाता था कि अमुक यात्री या व्यक्तिके पास रकम है तब वे राह चलते यात्रीके पीछेसे रेशमी रूमालका फन्दा फेंककर पीछे खीच लेते थे। रेशमी रूमालमें पैसा रखकर दो गाँठ बाँध दी जाती थी। जब यह दोनो गाँठ आपसमें मिलकर कस जाते थे तब श्वासनलिका दब जाती थी और इस प्रकार दम घुँट जानेकी वजहसे यात्रीका प्राणान्त हो जाता था।

पुण्य लूटनेकी गरजसे और मठ-मन्दिर बनवानेके लिए अपने साथ काफी रकम लाते थे। उस रकमको यहाँके ठग नकली तीर्थ-पुरोहित बनकर इस तरह उड़ाते थे जिसे देखकर प्राचीन युगके आचार्यको भी पसीना आ सकता था।

स्वर्गमे अपनी सीट रिजर्व करानेके कांक्षीको पूजा-अर्चनामे उलझाकर बेचारेकी गर्दन इस सफाईसे उतार ली जाती थी कि क्या मजाल जो आँख भी झपक सके। एक जमाना था जब नकली तीर्थ-पुरोहित दर्शन करानेके लिए अपने अड्डेपर ले जाते थे। अचानक रास्तेमे 'जय बॉसदेव' कहते ही पीछेसे यजमानोंके ऊपर 'बॉसदेव' गिर पड़ते थे। कुछ लोग काशी करवटको इस काण्डके लिए अधिक जिम्मेदार ठहराते है। 'बनारस गजेटियर' के अनेक पृष्ठ इस रक्त-रजित ठगीके वर्णनोसे भरे पड़े है।

बनारसी ठग

बनारसमें कौन ठग है और कौन रईस, यह बात जरा मुश्किलसे समझमे आती है। 'ठग जाने ठगकी भाषा' कहावतके अनुसार जहाँ भाषामें इतना अन्तर है तब उनकी वेष-भूषा और हथकण्डोमें कितना अन्तर होगा, यह समझनेकी बात है। सच पूछिये तो बनारसी ठगोकी कोई खास पहचान नहीं है। वह आपके पास सरकारी अधिकारी बनकर आ सकता है और आपका साला बनकर भी। 'का जाने केहि भेपमे नारायण मिल जॉय' कहावतकी भॉति कब किस वेषमे आपको वह ठग सकता है, यह आप नही भॉप सकते।

गलेमे सिकडी, आँखोमे चश्मा, पैरोंमे नागरा जूता, कानमे इत्रका फाहा, तनपर तंजेबका कुर्ता, सरपर दोपल्लिया टोपी पहने और हाथमें चॉदीकी मूठकी छड़ी लिए बाजारमे टहलनेवाला व्यक्ति शहरका नामी रईस हो सकता है और नम्बरी ठग भी। वह व्यक्ति आवारा या शोहदा भी हो सकता है और एक पक्का जासूस भी। इसलिए बनारसमें कौन

व्यक्ति क्या है, जब तक अच्छी तरह जान न लिया जाय, उसके बारेमें राय देना उचित नहीं।

ठगोंके माई-बाप नहीं होते। वक्त जरूरतपर वे अपने बापको भी ठग लेते हैं। कहा जाता है कि एकबार एक सुनार परिवारमें उन्हींके घरकी लडकी ससुरालसे कुछ सोना लेकर अपने बापके घर जेवर बनवाने के लिए आयी। बेटा आगमे तपाकर जेवर बनाने लगा तभी बापजान 'राम-राम' कह उठे। बेटाको इशारा समझते देर नहीं लगी। उसने कहा—'क्या राम-राम बकते हो। सोनेकी लंका मिट्टीमें मिल गयी है।'

बापने सोचा था कि बेटा कहीं बहनके प्रति रियायत न बरते। इधर बेटा बापसे भी होशियार निकला। बापके इशारा करनेके पहले ही उसने बहनके जेवरसे सोना कपटकर राखमें मिला दिया था। यह है ठगोंकी भाषाका नमूना।

आज तो हालत यह है कि बेटा बापको ठगता है तो बाप बेटेको। पति पत्नीको ठग समझता है तो पत्नी पतिको। अधिक दूर क्यों रेल, बस और रिक्शेपर सवार होते समय लोग अपने सहयात्रीको इस प्रकार घूरते हैं मानो किसी 'चाइयाँ' या गिरहकट्टके पास बैठ रहे हो। सिर्फ यही नहीं, बल्कि तुरन्त अपनी अगल-बगलकी जेबोंको उठाकर सामनेकी ओर कर लेते है ताकि उनका सहयात्री उसका नाजायज फायदा न उठा ले।

ठगोंके हथकण्डे

अगर आप यह सोंचते हो कि खास बनारसके व्यक्ति ठगोंके चगुलमें नहीं फँसते तो आपका यह ख्याल गलत है। यह ठीक है कि बनारसी लोग ठगोंके अनेक हथकण्डोंसे परिचित हो गये है। इधर ठगोंका दल भी प्रगतिशील हो गया है। वे नित्य नये हथकण्डोंका आविष्कार करते रहते हैं।

एक जमाना था, जब नकली मृत बच्चा बनाकर औरतें आने-जाने वाले मुसाफिरोंको ठगा करती थीं। परदेशी यात्री बनकर 'हमारा सब सामान चोरी चला गया' कहकर लोग लोटा बेचते हुए दिखाई देते थे। कुछ बाबा दो-एक चमत्कार दिखाकर लोगोंको ठगा करते थे। कुछ लोग दूसरोंकी कमजोरीका और औरतोंके प्रेम पत्रोंको कब्जेमें कर ठगनेका कौशल रचते है। नयी कम्पनी, नयी फर्म और नयी संस्था बनाकर लोगोंको ठगना साधारण बात हो गयी है।

सिर्फ पुरुष ठग ही इस कार्यमे लिप्त नहीं रहते। पुरुषोसे कही अधिक महिलाएँ इस दिशामे अधिक सक्रिय भाग लेती है। एक बार एक दूकानदारके यहाँ ४० रुपयाका कपडा लेकर अपने सोते हुए बच्चे-को उसके यहाँ रख महिला ठग अपना सौ रुपयेका नोट भुनानेके लिए आगे बढ़ गयी। जब काफी देरतक नहीं लौटी तब दूकानदारने सोचा कि आखिर लड़का रो क्यो नही रहा है? कपड़ा हटाकर जब देखा तब वहाँ लड़केके स्थानपर रबड़का पुतला था। उस समयतक हजरत ४० रुपयेका कपड़ा खो चुके थे।

एकबार एक ठग एक प्रसिद्ध सर्राफके यहाँ १ हजार रुपयेका जेवर लेकर सौ-सौके दस नोट देकर चला गया। उसके जानेके थोड़ी देर बाद उसका सहयोगी आया और उसने भी एक हजार रुपयेका जेवर लिया। इसके बाद उसने कहा—'कैशमेमो काट दीजिये।'

दूकानदारने कैशमेमो काट दिया। हजरत बिना रुपया दिये जाने लगे तब दूकानदारने कहा—'साहब रुपया दीजिये।' उसने कहा—'रुपया मै आपको दे चुका हूँ। आपने अपने बक्समें रखा है, देख लीजिये।'

आँखके सामने इस तरह ठगी करते देख सर्राफने उसे पुलिसके हवाले कर दिया। पुलिसके सामने ठगने बयान दिया कि मैंने सौ-सौके दस नोट इन्हें दिया है। सभी नोटोंपर मेरे हस्ताक्षर हैं। यकीन न हो तो तलाशी लेकर देख लिया जाय। इसके पूर्व जो ठग सौ-सौके दस नोट

दे गया था, उनपर दूसरे ठगके हस्ताक्षर प्रमाणित हो गये। इस प्रकार वह बच गया। बनारसमें इस ढंगकी भी ठगी होती है।

बॉझ औरतोंको बच्चा होनेकी दवा देनेवाले, अवारे पतिको वशमे करनेके लिए पूजा पाठ करनेवाले, मुकदमें जितानेवाले और कीमिया (नकली सोना) बनाने वालोंकी कमी यहाँ नहीं है।

बनारसी ठगीका अनूठापन सिद्ध करने वाले कुछ 'चित्र' प्रस्तुत किये जा रहे हैं। विश्वास है, इससे आपको आनन्द आ जायगा।

नैपालके राज परिवारसे सम्बद्ध एक राणा साहब सपरिवार काशी दर्शनके निमित्त पधारे थे। गंगा स्नान करनेवाली औरतोंको कलात्मक ढंगसे गायब करके उनके शरीरपरके आभूषणोंपर हाथ साफ कर देनेकी घटनाएँ, पर्याप्त सुख्याति प्राप्त कर चुकी थी। होता यह था कि गगाके अन्दर, घाटसे दूर खूँटे गाड़ दिये गये थे। घाटसे डुबकी लगाकर औरतोंको घसीटकर उन्हीं खूँटोंमे बाँध दिया जाता था। घटनास्थलसे काफी दूर होनेके कारण किसी माईके लालको रहस्यका भास भी नहीं होता था। आभूषण तो जाते ही थे, लाशतकका कोई पता नहीं चलता था।

उक्त राणा साहब अपनेको जरा होशियार समझते थे। उन्होंने सोचा, ऐसी घटनाएँ औरतोंके शरीरके आभूषणोंके कारण ही घटित होती है। सो उन्होने परिवारकी औरतोंसे स्नानके पूर्वके शरीरके आभूषणोंको उतार देनेको कहा। सारे आभूषणोंको एक मजबूत टोकरीके नीचे दबा, उसके ऊपर हाथमें नगी खुखड़ी लेकर हजरत जम गये। मनमें ठगोंको एक बढ़िया-सी गाली देकर निश्चिन्त हो गये। बनारसी-ठगोंकी नजर आभूषणोंपर पहले ही पड चुकी थी और इसका मतलब था, जैसे भी हो, उनपर अधिकार जमाना। औरतोंका शरीर निराभूषण था, सो वे व्यर्थ थीं। आकर्षणका केन्द्र राणा साहब ही थे।

थोड़ी ही देर बाद राणा साहबने देखा, साठ-सत्तर वर्षका एक वृद्ध स्नानोपरान्त भीगे ही वस्त्रोंमें सीढ़ीपर चढ़ रहा है। भीड-भाड बहुत थी। अचानक उस वृद्धकी गीली धोतीसे एक गिन्नी झन्न-से राणासाहबके पास ही गिरी। परन्तु वृद्ध राम-राम कहता हुआ आगे ही बढता गया। राणा-साहबने चौककर देखा, दस कदम बाद फिर एक गिन्नी, दस कदम बाद एक और—ऐसे ही हर दस कदम बाद बीसो गिन्नियां पडी थीं, पर लगता था उनकी ओर वृद्धका ध्यान ही न गया हो। गिन्नियोंकी चमकने राणाको विचलित-सा कर दिया। धीरेसे उठे और उन गिन्नियोंको समेट ले आये। वृद्ध अदृश्य हो चुका था। गिन्नियोको जेबके हवाले कर वे फिर टोकरी पर जा बैठे। खेल समाप्त हो चुका था। औरते जब स्नान करके वापस आयी तब टोकरीके नीचे आभूषणोके स्थानपर बड़ा-सा 'जीरो' रखा था।

अपना एक स्मरणीय अनुभव है। मेरे एक मित्रको हृषिकेशवाला पञ्चाङ्ग चाहिए था। मैने उसे देखकर दूकानदारसे बॉध देनेको कहा। तभी पासके एक दूकानमे चार-पॉच गृहस्थ स्नान और देव-दर्शनके पश्चात् मस्तकपर चन्दनका तिलक लगाये गोस्वामी तुलसीदासका रामायण खरीदने आये।

दूकानदारने सरसे पैर तक घूरनेके बाद ग्राहकको भॉप लिया। फिर रामायणपर छपे १५ रुपया मूल्यपर उँगली रखते हुए गम्भीर स्वरमे कहा—'दाम त देखते हउवा गृहस्थ, भगत आदमी हउवा, बोहनी क बखत हव, तोसे मोल-चाल न करब, तोरे बदे १३ रुपयामे दे देब। देख, कोईके बताये जिन, नाही त हमरे लिए मुश्किल हो जाई। (अर्थात् दाम तो देख ही रहे हो, गृहस्थ आदमी हो, भगत हो, इधर बोहनीका समय है, तुमसे मुनाफा नहीं लूँगा। तेरह रुपयामे दे दूँगा, लेकिन किसीको बताना नही, वर्ना मेरे लिए मुश्किल हो जायगी।)

गृहस्थ बेचारे चमत्कृत हो उठे। सोचा—बनारसमे रामायणके विक्रेता भी बडे भारी भक्त है। बेचारा १३ रुपया देकर रामायण लेकर

चला गया, जब कि उसकी कीमत ४ रुपया थी। इधर मै यह तमाशा देख रहा था, उधर मेरे दूकानदारने मेरी लापरवाहीका भी फायदा उठा लिया। एक हफ्ते बाद मेरे मित्रने मुझे लिखा कि मैंने तुम्हे हृषिकेश-वाला पञ्चाङ्ग भेजनेको कहा था न कि रद्दीकी कतरनोका बण्डल।

मै अपनी मूर्खतापर चमत्कृत हो उठा। कर ही क्या सकता था। स्वर्गीय प्रेमचन्द्रजीने भी इसी तरह एक दूकानदारको ६ सन्तरा बढ़िया बाँध देनेके लिए कहा, जब वे घरसे आये तब सबके सब सन्तरे सड़े निकले।

आजकल ठगीका एक नये हथकण्डेका आविष्कार हुआ है। दो आदमी पहलेसे एक नयी साइकिल लिए टहलते रहते हैं। जहॉ कोई नयी साइकिल खडी देखते है, वहॉ एक आदमी साइकिल लेकर जाता है और ठीक दूसरी साइकिलके बगलमे अपनी साइकिल रख दूकानके भीतर चला जाता है। पहलेवाला व्यक्ति, जिसकी साइकिल बाहर रहती है, उसे सिर्फ यही ख्याल रहता है कि मेरी साइकिल अपनी जगहपर है तो। दूसरे अपनी साइकिलकी कोई पहचान नहीं कर पाता। इसी बीच जो व्यक्ति (ठग) भीतर जाता है, बाहर आकर पहले वाले व्यक्तिकी साइकिल लेकर गायब हो जाता है और जब पहला व्यक्ति बाहर आकर उस साइकिलपर हाथ रखता है तब ठगका दूसरा दोस्त जो उसी जगह सारी कार्यवाहियोपर नजर रखता है, आकर बाधा देता है। इस प्रकार पहलेवाले व्यक्तिकी ऑखोके आगे अन्धेरा छा जाता है।

अब तो बनारसके लोग काफी होशियार हो गये है। नकली माले-रिश्तेदारोपर भी विश्वास नहीं करते। ठगोकी सीमा केवल इन्हीं बातोपर स्थिर नही है। कुछ ठग पत्रकार बनकर भी ठगते है। वे आपकी रचना आपके नामसे छापकर आपके नामका बाउचर बनाकर रुपया हजम कर लेगे। आपने सोचा—चलो अच्छा हुआ कमसे कम मेरी रचना तो छप गयी। उधर सम्पादकजीने आपपर एहसानका एहसान किया और पुरस्कार

मुनाफेमें ले लिया। पत्रकार बनकर कहीं भी किसी जगह रोब जमाकर ठगा जा सकता है, बशर्ते भेद न खुल जाय।

आप विश्वास करे या न करे, कुछ पेशेवर ठग कचहरीके अहातेमे 'जमानत' देनेके लिए घूमते-फिरते रहते है। ऐसे लोग अक्सर यह पता लगाते रहते है कि किसके मकानका टैक्स काफी दिनोसे दिया नही गया है। हजरत उनका टैक्स चुकाकर रसीद ले लेते है और उसी रसीदकी बदौलत जमानतके इच्छुक देहातियोसे काफी रकम मूडकर जमानत दे देते हैं। इसके बाद अगर वह आदमी मुकदमे जीत जाता है तो कोई बात नहीं, वर्ना अदालतसे उस मकान-मालिकके नाम कुर्की आ जाती है। उस समय बेचारा मकान-मालिक यह समझ नहीं पाता कि यह कुर्की क्यो आयी ? मैने कब किसकी जमानत दी है ?

ऐसे है बनारसी ठगीके हथकण्डे।

: बनारसी संस्कृति :

बनारस धार्मिक क्षेत्र ही नहीं है, पण्डितोकी नगरी भी है। धर्म और संस्कृतिका पण्डिताऊपन जितना यहाँ है, उतना अन्यत्र नहीं है। आज भी ज्योतिष शास्त्रमें काशीके स्टैण्डर्ड समय और ज्योतिषकी मान्यता सारे देशमे है। शायद इसीलिए इस शहरको भारतकी सास्कृतिक राजधानी कहा गया है।

सात वार नौ त्योहारकी नगरी

हिन्दीमे एक कहावत है—'काशीका अद्भुत व्यवहार, सात वार नौ त्योहार।' अगर आप काशीमें दो एक-साल रह जायँ और आपको पत्नी कुछ अधिक धर्मपरायण हो तो यकीन मानिये इन त्योहारोंमें खर्चा करते-करते करोडपतिकी भी लुटिया डूब जा सकती है। यही वजह है कि बनारस वाले खानेके अधिक शौकीन हैं। पहननेके शौकीन इसलिए नहीं हैं कि खानेसे अधिक पैसा बच ही नहीं पाता, क्या करें बेचारे। जो लोग यहाँ सड़कोपर पुट-पानी देकर टहरान देते है, सही मानेमें वह केवल उनका दिखावा है, अन्तसके वे असली बनारसी नहीं है।

हमे इस बातका गर्व है कि बनारसके अलावा हिन्दुस्तानके किसी भी शहरमे इतने प्रेमसे इतने अधिक त्योहार नहीं मनाये जाते। भले ही उनका रूप यहाँ साधारण हो, अधिक टीम-टाम न हो और उनमें ऐश्वर्यके दर्शन न हो, लेकिन त्योहार तो श्रद्धा-भक्ति और संस्कृतिके अंग होते है, उसमें ऐश्वर्यके दर्शनका अर्थ केवल दिखावा मात्र होता है। लखपतिके घरके शालिग्राम सोनेके सिंहासन पर रहते है और गरीबके घर पेपरवेटकी तरह जमीनपर बेलपत्र और शुद्ध गंगाजल सेवन

करते है। बड़ोंके घर भगवान् किरायेके पण्डित द्वारा पूजित होते है और गरीबके घर अशुद्ध मंत्र पाठ द्वारा पूजित होते है, इन दोनो रूपोंका सामंजस्य यहाँके मेलोंमें, पर्वोंमे और मन्दिरोंमे देखा जा सकता है।

सच पूछिये तो पर्व और सामाजिक प्रथाएं ही संस्कृतिके अंग है। बनारसमे त्योहारोंका रूप देखकर यह अनुभव नहीं होता कि हम हाइड्रोजन बमके युगमे है, भारतमे अन्न संकट है, हम विदेशी सहायता-पर पल रहे है और देशमे भयंकर गरीबी है। यद्यपि यह बात ठीक है कि आजकल पहलेकी तरह पर्व नहीं मनाये जाते, फीका-फीका-सा अनुभव होता है, फिर भी उनका रूप आज भी मौजूद है।

उदाहरणके लिए सूर्यग्रहणको ही ले लीजिये, यह एक बे-मौसकका पर्व है। सूर्यग्रहणका महत्व कुरुक्षेत्रमे है और चन्द्रग्रहणका बनारसमें। लेकिन सूर्यग्रहणके अवसरपर बनारसके कुरुक्षेत्रकी दशा देखकर यह विश्वास नही होता कि इतनी दुर्गति पंजाबके कुरुक्षेत्रकी होती होगी।

बनारसका वर्ष प्रथम मेला 'रथयात्रा' माना जाता है। यदि पुरीको भारतके नक्शेसे गायब कर दिया जाय तो बनारसके रथयात्रा मेलाकी तुलना कहींसे नहीं की जा सकती। गर्मीसे दग्ध आकुल हृदयोंका यहाँ तीन दिनोतक अखण्ड सम्मेलन होता है। नानखटाई और देशी पानका प्रथम भोग इसी मेलेसे शुरू होता है। शायद ही ऐसा कोई अरसिक व्यक्ति होगा जो यहाँकी छटा देखकर मुग्ध न हो जाय।

रथयात्राके बाद बनारसमें मेलोंकी बाढ आ जाती है। गर्मीमें घरोंमे बन्द रहनेके पश्चात् यहाँके नागरिक मेला या पर्वमें उसी प्रकार भाग लेने लगते है, जैसे गोशालासे बाहर उन्मुक्त हवामे आकर गाये उछलने लगती है। दुर्गाजी, सारनाथ, संकटमोचन, लोलार्क, सोरहिया, बेचूबीर, प्यालेका मेला और अनन्त चौदस आदि पर्व आषाढसे भादोतक मनाये जाते है। नाग पंचमीके दिन भोरके समय बनारसके गली कूंचेमे 'छोटे

गुरूका बड़े गुरूका नाग लो भाई नाग लो'की आवाज गूँजने लगती है। दोपहरतक सभी अखाडोमे बनारसी पट्ठोका दंगल चालू रहता है। यहाँकी 'नाग नथैया' (कालियादहन) जैसी खतरनाक लीला करनेका ताव शायद ही किसी शहरवालेको हो। इस लीलाको देखकर एकबार बड़े-बड़े सूरमा भी 'दहल' जाते है। बाढ़के दिनोमे यह लीला देखनेके लिए सारा शहर उमड पडता है। अब तो दुर्घटनाएं कम होती है, वर्ना प्रतिवर्ष भीड़ और बाढ़के कारण इस लीलामे दो-चार व्यक्ति मर जाते थे।

अनन्त चौदसके बाद बनारसकी हर मुहल्लेकी रामलीला शुरू हो जाती है। बहुत कम लोगोको यह बात मालूम है कि काशीमे रामलीलाके जन्मदाता और प्रथम व्यास गोस्वामी तुलसीदासजी रहे। कहनेको काशी शिवकी नगरी है, पर रामलीलाओका रूप देखकर यह अनुभव होता है कि मानो त्रेतायुगमे रामचन्द्रजी अयोध्यामे नही, बनारसमे रहते थे। यो तो रामनगरकी लीला सारे भारतमे प्रसिद्ध है और नित्य बनारससे काफी लोग उसपार 'झाँकी' (लीला) देखने जाते हैं। रामनगरका लंका दहन, लक्साकी फुलवारी-धनुपयज्ञ, चेतगंज, खोजवाँ, शिवानगर और काशीपुराकी नककटैया अपने ढगकी निराली होती है। बनारसकी सबसे प्रसिद्ध लीला चेतगंजकी नककटैया और नाटी इमलीका भरतमिलाप है। चेतगञ्जकी नक्कटैया देखनेके लिए लोग रात १२ बजेसे सुबह ८ बजेतक तपस्या करते है। नाटी इमलीका भरतमिलाप अपनी सादगीके लिए बेजोड है। कहा जाता है, एकबार कोई अग्रेज सज्जन उधरसे गुजर रहे थे। इस लीलाको देखकर वे रुक गये। परिहासवश उन्होने अपने चपरासीसे पुछवाया कि रामायणमेके हनुमान् तो समुद्र लाँघ गये थे, क्या यह हनुमान् सामनेवाली वरुणा नदी लाँघ सकते है?

सुना जाता है—यह चैलेञ्ज सुनकर हनुमान बना व्यक्ति राम बने व्यक्तिसे आज्ञा माँगकर इस पारसे उछलकर वरुणाके उसपार पहुँच गया

और तत्काल मर गया। आज भी उसके मुकुटकी पूजा होती है। बनारसकी यही एक लीला है, जिसके लिए सम्पूर्ण बनारसका कारबार बन्द रहता है। पाँच मिनटकी झाँकीके लिए सारा शहर उमड़ पड़ता है। उस दिन वहाँ २ रुपयेसे ६४ रुपये तकके बैठनेके टिकट बिकते है। एक यही लीला है जिसे देखनेके लिए महाराज बनारस आते है।

काशीको तीन लोकसे न्यारी सिर्फ एक-दो गुणोके कारण नही कहा गया है। यहाँ अनेक अजीब बाते होती है। उदाहरणके लिए बनारसमे प्रत्येक पर्व दो दिन मनाया जाता है। प्रथम दिन शैव मतवाले मनाते है और दूसरे दिन उदया तिथिपर वैष्णव मतवाले मनाते है। अगर कही दोनोका एक ही दिन, निश्चित हुआ तो पूछना ही क्या। कभी-कभी तो कोई पर्व तीन-तीन दिन मनाया जाता है। मसलन जन्माष्टमी, शिवरात्रि आदि। दो दिन तो सभी त्योहार मनाये जाते है। नवरात्रका मेला यहाँ वर्षमे दो बार मनाया जाता है। एकबार आश्विनमे दूसरी बार चैत्रमे। कुछ लोगोका कहना है कि कलकत्ताके बाद बनारसका दशहरा पर्व दर्शनीय होता है। पूर्वी देशोसे भी इस अवसरपर इतने यात्री आते हैं कि रिक्शावालोका मिजाज नही मिलता। दीपावलीका महत्व और चाहे जिस रूप मे हो, बनारसमे इसका अन्नकूटसे और सोलहपरीके नाचसे घनिष्ट सम्बन्ध है। दीपावलीके दिन जुआ न खेलनेसे छछुन्दरका जन्म होता है। पिशाचमोचनका मेला मूली और भण्टाके लिए प्रसिद्ध है। इसी माहमे औरातरे (आँवला वृक्षके नीचे) पिकनिक मनाना भी पर्वमे शामिल किया गया है।

माघ मासमे 'वेदोव्यास' इसलिए दर्शन किया जाता है ताकि बनारस-वालोके लिए उन्होने जो शाप दे रखी है, उससे मुक्ति मिल जाय। पिकनिकका पिकनिक और पुण्य मुनाफेमे लूटनेका यह बनारसी हथकण्डा है। कहनेका मतलब वक्त जरूरतपर लोग भगवान्‌को भी चरका देते है।

गुरूका बड़े गुरूका नाग लो भाई नाग लो'की आवाज गूँजने लगती है। दोपहरतक सभी अखाड़ोमें बनारसी पट्ठोका दंगल चालू रहता है। यहाँकी 'नाग नथैया' (कालियादहन) जैसी खतरनाक लीला करनेका ताव शायद ही किसी शहरवालेको हो। इस लीलाको देखकर एकबार बड़े-बड़े सूरमा भी 'दहल' जाते है। बाढ़के दिनोंमे यह लीला देखनेके लिए सारा शहर उमड़ पडता है। अब तो दुर्घटनाएं कम होती है, वर्ना प्रतिवर्ष भीड़ और बाढ़के कारण इस लीलामे दो-चार व्यक्ति मर जाते थे।

अनन्त चौदसके बाद बनारसकी हर मुहल्लेकी रामलीला शुरू हो जाती है। बहुत कम लोगोको यह बात मालूम है कि काशीमे रामलीलाके जन्मदाता और प्रथम व्यास गोस्वामी तुलसीदासजी रहे। कहनेको काशी शिवकी नगरी है, पर रामलीलाओका रूप देखकर यह अनुभव होता है कि मानो त्रेतायुगमे रामचन्द्रजी अयोध्यामें नही, बनारसमे रहते थे। यो तो रामनगरकी लीला सारे भारतमे प्रसिद्ध है और नित्य बनारससे काफी लोग उसपार 'झाँकी' (लीला) देखने जाते हैं। रामनगरका लका दहन, लक्साकी फुलवारी-धनुषयज्ञ, चेतगंज, खोजवॉ, शिवानगर और काशीपुराकी नककटैया अपने ढगकी निराली होती है। बनारसकी सबसे प्रसिद्ध लीला चेतगंजकी नककटैया और नाटी इमलीका भरतमिलाप है। चेतगञ्जकी नक्कटैया देखनेके लिए लोग रात १२ बजेसे सुबह ८ बजेतक तपस्या करते है। नाटी इमलीका भरतमिलाप अपनी सादगीके लिए बेजोड है। कहा जाता है, एकबार कोई अग्रेज सज्जन उधरसे गुजर रहे थे। इस लीलाको देखकर वे रुक गये। परिहासवश उन्होने अपने चपरासीसे पुछवाया कि रामायणमेके हनुमान् तो समुद्र लाघ गये थे, क्या यह हनुमान् सामनेवाली वरुणा नदी लॉघ सकते है ?

सुना जाता है—यह चैलेञ्ज सुनकर हनुमान बना व्यक्ति राम बने व्यक्तिसे आज्ञा माँगकर इस पारसे उछलकर वरुणाके उसपार पहुँच गया

मानो आप सीधे राची (पागल खाना)से चले आ रहे है। यही बात दिल्ली और बम्बईमें भी है। वहाँके कुली-कबाड़ी भी कोट-पैण्ट पहने इस तरह चलते जैसे बनारसमे ई० आई० आर०के स्टेशन मास्टर। यहाँके कुछ दूकानदार ऐसे भी देखे गये है जो ताश, शतरंज या गोटी खेलनेमे मस्त रहते है, अगर उस समय कोई ग्राहक आकर सौदा माँगता है तो वे बिगड़ जाते है। 'का लेब? केतन क लेब? का चाही, केतना चाही?' इस तरह सवाल करेंगे। अगर मुनाफेदार सौदा ग्राहकने न मागा, तबियत हुई दिया, वर्ना माल रहते हुए वह कह देंगे—नाहीं हव–भाग जा।' खुदा न खास्ता ग्राहककी नजर उस सामानपर पड़ गयी तो उस हालतमे भी वह कह उठते है–'जा बाबा, जा, हमें बेचेके नाही हव।'

है किसी शहरमे ऐसा कोई दूकानदार? कभी-कभी झुंझलाकर वे मालका चौगुना दाम बता देते है। अगर ग्राहक ले लेता है तो वह ठगा जाता है और दूकानदार जट्टूकी उपाधि मुफ्तमे पा जाता है।

बनारसकी सडकोंपर चलने-फिरनेकी काफी आजादी है। सरकारी अफसर भले ही लाख चिल्लाये, पर कोई सुनता नहीं। जब जिधरसे तबियत हुई चलते है। अगर किसी साधारण आदमीने उन्हें छेड़ा तो तुरन्त कह उठेंगे—'तोरे बाप क सडक हव, हमार जेहरसे मन होई, तेहरसे जाब, बड़ा आयल बाटऽ दाहिने-बाँये रस्ता बतावे।' जब सरकारी अधिकारी यह कार्य करते हैं तब उन्हें भी कम परेशानियाँ नहीं होती। लाचारीमें हार मानकर वे भी इस सत्कार्यसे मुँह मोड़ लेते हैं।

सडकपर घण्टों खडे होकर प्रेमालाप करना साधारण बात है, भले ही इसके लिए ट्रैफिक रुक जाय। जहाँ मनमें आया लघुशंका करने बैठ जाते है, बेचारी पुलिस देखकर भी नहीं देखती। डबल सवारी, बिना बत्तीकी साइकिल चलाना और वर्षोंतक नम्बर न लेना रोजमर्रेका काम है। यह सब देखते-देखते यहाँके अफसरोंका दिल पक गया है। पक

अनूठा आयोजन किया है और शायद आगे चलकर इसे भी 'पर्व' मान लिया जा सकता है।

आजाद शहर

भारतको सन् १९४७मे आजादी मिली। अब हम आजाद है। आजादीका क्या उपयोग है, इसकी शिक्षा लेनी हो तो बनारस चले आइये। बनारसवाले १९४७ से ही नहीं, अनादिकालसे अपनेको आजाद मानते आ रहे है। इन्हें नयी व्यवस्था, नया कानून या नयी बात कत्तई पसन्द नहीं। इसके विरुद्ध वे हमेशा आवाज उठायेंगे। बनारस कितना गन्दा शहर है, इसकी आलोचना नेता, अतिथि और हर टाइपके लोग कर चुके हैं, पर यहाँकी नगरपालिका इतनी आजाद है कि इन बातों का ख्याल कम करती है। खास बनारस वाले भी सोचते है कि कौन जाय बेकारका सरदर्द लेने। हिन्दुस्तानमे सर्व प्रथम हडताल २४ अगस्त सन् १७९० ई०में बनारसमे हुई थी और इस हड़तालका कारण थी गन्दगी। सिर्फ इसी बातके लिए ही नहीं, सन् १८०९ ई०में जब प्रथम गृहकर लगाया तब बनारसी लोग अपने मकानोंमे ताला बन्दकर मैदानोंमे जा बैठे। शारदा बिल, हिन्दूकोड बिल, हरिजन मन्दिर प्रवेश, गल्ले-पर सेलटैक्स और गीता काण्ड आदि मामलोंमें सर्व प्रथम बनारसमें हड़तालें और प्रदर्शने हुई है। कहनेका मतलब बनारसवाले हमेशासे आजाद रहे और उन्हें अपने जीवनमें किसीकी दखलन्दाजी पसन्द नहीं आती। यहाँ तक कि वेष-भूषामें परिवर्तन लाना पसन्द नहीं हुआ। आज भी यहाँ हर रंगके, हर ढंगके व्यक्ति सडकोंपर चलते-फिरते दिखाई देंगे। एक ओर ऊँट, बैलगाड़ी, भैसा गाड़ी है तो दूसरी ओर मोटर, टैक्सी, लारी और फिटन है। एक ओर अद्दी तजेब झाड़े लोग अदासे टहलते हैं तो दूसरी ओर खाली गमछा पहने दौड़ लगाते हैं।

आप कलकत्ताकी सडकोंपर धोतीके ऊपर बुशशर्ट पहने या कोट-पैण्ट पहनकर पैरोंमें चप्पल पहने तो लोग आपको इस प्रकार देखेंगे